धन्यवाद

निम्न लिखित उदारचेता धार्मिक सज्जनोंने इस ग्रंथकी निम्न लिखित प्रकार प्रतियोंके प्रकाशनमें सहायता दी है, एतदर्थ हम उनको कोटिशः धन्यवाद देते हैं।

प्रति	
१०००	श्री ब्र. शांतमतीजी (मांगूर)
१००	श्री आचार्य शांतिसागर ग्रंथमाला (छाणी) व शांति धर्म ग्रंथमाला उदयपुर.
१००	सेठ केशरीमल गुलाबचंदजी सांभर
१००	सेठ कुरीचंद मंगरजी सावला
१००	सेठ प्यारचंद पूनमचंद हरावत कल्याणपुर

व्यवस्थापक —

श्री आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला

प्रस्तावना.

' मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः '

प्रास्ताविक.

सचमुचमें यह मन ही मनुष्यको संसारबंधनमें फंसानेवाला है और उसीकी स्थिरता व निर्मलतामें यह आत्मा मोक्षसाम्राज्यका अधिपति होसकता है। यह मन अत्यंत चंचल है, सूर्यकिरण जहां पहुंच नहीं पाते हैं वहांपर यह मन सहज ही पहुंच जाता है। संसारमें भयंकरसे भयंकर विकार के लिए यह कारण है। मनुष्य मनके द्वारा ही काम क्रोधादिक विकारोंमें पडता है, और स्वपर संक्लेशके लिए कारणीभूत क्रियावोंको करता है। स्वतःके संक्लिष्ट विचारोंके लिए यह मन ही कारण है। उसके विकृत होनेसे अनेक तरहसे अशुभ कर्मोंका बंध होता है। जिससे यह आत्मा दीर्घ संसारी होता है एवं आत्मोन्नति नहीं कर सकता है। इसलिए महा पुरुषोंने कहा है कि शिरको मुंडानेके पहिले मनको मुंडाना चाहिए। यदि मन नहीं मुंडाया, तो शिरको मुंडानेसे भी कोई उपयोग नहीं होता है। मनके सर्व विकारोंको दूर करनेसे काम क्रोधादिक अपने आप दूर होते हैं। काम क्रोधादिकके दूर होनेसे आत्मपरिणाममें विशुद्धि होती है। आत्मपरिणामकी विशुद्धिसे मनुष्य स्वानंद साम्राज्यको पा लेता है। इसलिए सबसे पहिले आवश्यक है कि अपने मनको वशमें करनेका यत्न करें।

इंद्रियोंका राजा मन जब वशमें होता है, उसकी लीला जब समाप्त होती है तब शेष इंद्रियें कुछ भी नहीं कर सकती हैं। श्री चारित्रचक्रवर्ति प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद आचार्य शांतिसागर महाराज सदृश वंदनीय विभूति व उनके शिष्यगण धन्य हैं जिन्होंने ऐसे प्रबल मनको अपने वशमें कर लिया है। यही कारण है उनकी वीतरागताकी मात्रा बढती जाती है।

श्री परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, विश्ववंद्य, विद्वच्छिरोमणि आचार्य कुंथुसागरजी महाराजने उस मनको वशमें कर अध्यात्मिक जीवनमें विशुद्धि प्राप्त की है। उनको अच्छीतरह स्वानुभव गम्य विषय होगया है कि मनको वशमें किये विना यह प्राणी आत्म राज्यको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए भव्य जीवोंके हितको लक्ष्यमें रखते हुए पूज्यश्रीने इस ग्रंथका निर्माण किया है।

विश्वोद्धार.

पूज्यश्रीका ज्ञान व वैराग्य इतना बढ गया है कि उससे असंख्य प्राणियोंका उद्धार हो रहा है। बाल्यसे ही उत्तम संगति उत्तम संस्कार, योग्य माता-पिताओंका उपदेश, सद्गुरुओंका समागम होनेसे यह मनुष्य किस उच्च आदर्श पर पहुंच जाता है एवं लोकवंद्य होता है इसके लिए आचार्य श्रीका उदाहरण पर्याप्त हैं। अनेक भवोंसे जिन्होंने अभ्यास पूर्वक संसारके स्वरूप का अध्ययन किया वे ही संवेग और निर्वेग भावनासे युक्त होकर लोकको भी सत्पथका प्रदर्शन करते हैं। आचार्यश्रीके जीवनमें

प्रारंभसे ही अर्थात् ब्रह्मचारी, क्षुल्लक व ऐल्लक सदृश श्रावकोत्तम अवस्थासे ही विश्वके उद्धार करनेकी चिंता हुई। उस समय आपने समाजमें वर्षोंसे फैले हुए कुसंस्कारोंको अपने उपदेशसे दूर किया, जो लोग स्वेच्छाचारी होकर अभक्ष्य भक्षण करते थे, संस्कार विहीन थे, धर्मकर्मसे अपरिचित थे, देवदर्शनादि नित्य क्रियाओंसे भी विमुख थे ऐसे मूढ़ बालकोंको आपने दयार्द्र चित्त होकर रास्ता लगाया। लाखों संस्कारविहीनोंको आपने यज्ञोपवीतादि संस्कारोंसे संस्कृत किया। लाखों ही जैनेतर हिंदू मुसलमान आदि भाइयोंने आपके उपदेशसे मद्य, मांस, मधु आदि निंद्य पदार्थोंका एवं दुर्व्यसनोंका त्याग किया।

विश्वविहार.

दिगंबर अवस्थाको धारण करनेके बाद आपके ज्ञान व चारित्रमें इतनी निर्मलता आई, जिससे धर्मकी अलौकिक प्रभावना हो रही है। निर्मल चारित्रके प्रभावसे जो विशिष्ट क्षयोपशम जन्य अनुभव लोकके सामने आया तो एक दम अज्ञान अंधकार दूर हुआ। श्री परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराजके संघमें आप परमप्रभावक साधु सिद्ध हुए। आपने अपने विद्वत्ता पूर्ण सुललित सुंदर मृदु वचनोंसे थोडे ही समयमें लोकको आकर्षित किया। जनता आपके उपदेशसे मुग्ध हुई। इस प्रकार आचार्य संघके साथ अनेक प्रांतोंमें विहार किया। गत कितने ही वर्षोंसे आपश्रीका गुजरात प्रांतमें विहार हो रहा है। गुजरात प्रांतका

आपके विहारसे बहुत ही सुधार हुआ। धर्मकी विशिष्ट प्रभावना हुई। आपश्रीका उक्त प्रांतमें छोटेसे छोटे बडेसे बडे ग्राम व नगर में विहार हुआ। और प्रत्येक स्थानपर पूज्यश्रीका सार्वजनिक तत्वोपदेश हुआ।

विश्ववंद्यत्व.

इस पुण्य विहारमें गुजरातके कितने ही छोटे बडे शासक पूज्यश्रीके चरणोंके भक्त बने। सुदासना, अलुवा, पेथापुर, बलासना, माणिकपुरा, मोहनपुरा, ओरान, हिम्मतनगर, टींवा, विजयनगर आदि बहुतसे स्थानोंके शासक आपश्रीके परमभक्त हैं। सुदासनाके ठाकुर साहब श्री पृथ्वीसिंहजी बहादुर, युवराज कुंवर साहब रणजीतसिंहजी, लिंबोदारके ठा. सा. जगत्‌सिंहजी, अलुवाके ठा. सा. अर्जुनसिंहजी, माणिकपुराके ठा. सा. प्रवीणसिंहजी, पिंडरडाके ठा. सा. रणजीतसिंहजी, विजयनगरके ठा. सा. ने. ना. श्री हमीरसिंहजी बहादुर आदि पूज्यश्रीके दर्शनके लिए बहुत ही लालायित रहते हैं। एवं अपने राज्योंमें आचार्य संघका बहुत ही वैभवयुक्त स्वागत किया। एवं अपने राज्यों में आचार्यश्रीकी जयंती वैभवसे मनानेकी घोषणा की। साथ ही उक्त दिनको अहिंसा-दिनके रूपसे मनानेकी फरमान निकालकर उस दिन सरकारी छुट्टीकी घोषणा की। बडोदा राज्यमें संघका विशिष्ट स्वागत होकर राजकीय न्यायमंदिरमें हजारों जनता व खास दिवान साहबकी उपस्थितिमें पूज्यश्रीका विश्वधर्मपर उपदेश हुआ। यह बडोदा राज्यके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है।

ग्रंथनिर्माण.

इसी प्रकार पूज्यश्रीने अपनी विद्वत्ता द्वारा जनताका स्थायी उद्धार हो इस हेतुसे आजतक अनेक ग्रंथोंका निर्माण किया है। पूज्यवर्यने अभीतक उत्तमोत्तम तीसों ग्रंथोंका निर्माण किया है। वे ग्रंथ इतने लोकप्रिय हुए हैं कि आचार्यश्रीके भक्तोंने उनको हजारोंकी संख्यामें प्रकाशित कर उनका प्रचार किया है। जैन जैनेतर सभी लोग बहुत दिलचस्पीसे उन ग्रंथोंका स्वाध्याय करते हैं।

चातुर्मास व तीर्थोद्धार.

पूज्यश्रीका चातुर्मास जहां भी हुआ है वहां अभूतपूर्व प्रभावना हुई है। आपके चातुर्मासका ही फल है कि गुजरातके कई तीर्थोंका उद्धार हुआ है। तारंगा क्षेत्रमें विशाल मानस्तंभ व प्रतिष्ठा महोत्सव, इसी प्रकार पावागढ क्षेत्रमें विशाल मानस्तंभ व प्रतिष्ठा पूज्यश्रीके चातुर्मासके फलस्वरूप हुए हैं। इसी प्रकार जहेर, ईडर वगैरह स्थानके चातुर्मासमें भी बहुतसे महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। अनेक स्थानमें वर्षोंसे आया हुआ परस्परका वैषम्य पूज्यश्रीके उपदेशसे दूर हुआ। स्थान स्थान पर संगठन होकर समाज बहुत प्रेमसे कार्य करती है। पूज्यश्रीके वचनोंमें जादू जैसा प्रभाव है। उनके सुंदर मिष्ट हितमय वचनोंसे पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाता है, सामान्य मनुष्योंकी बात ही क्या है? इसलिए सर्वत्र प्रेमका संचार होता है।

विश्वकल्याण.

इस प्रकार पूज्यश्रीके दिव्य विहारसे भव्योंका महदुपकार

हो रहा है। अनेक साधु संत पूज्यश्रीके संघमें रहकर आत्म कल्याण करनेके लिए लालायित रहते हैं। इस समय पूज्यसंघका चातुर्मास डुंगरपुर मेवाडकी पुण्यभूमिपर हो रहा है। संघमें इस समय अनेक साधु, संत, सत्पुरुष मौजूद हैं जिनमें श्री परमपूज्य मुनिराज आदिसागरजी महाराज, मुनिराज अजितसागरजी महाराज, आर्यिका धर्ममतीजी, आर्यिका विमलमतीजी, क्षुल्लक सीगंधरजी, क्षु. ज्ञानमतीजी, ब्र. विद्याधरजी, ब्र. जिनदासजी, ब्र. विमलदासजी, ब्र. रिषभदासजी, ब्र. शांतमतीजी, ब्र.अजितमतीजी आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

पूज्यश्रीके दिव्य विहारसे इसी प्रकार लोकातिशायी प्रभावना हो यही कामना है।

अनुवादक.

इस ग्रंथका अनुवाद श्री धर्मरत्न पं. लालारामजी शास्त्रीने किया है। श्री. पंडितजीकी साहित्यसेवासे जैनसमाज अच्छी तरह परिचित हैं। ग्रंथमालाके प्रायः सर्व ग्रंथोंका अनुवाद उन्हीके द्वारा हुआ है। इस साहित्यसेवाके लिए हम उनके आभारी हैं। इसके अलावा जिन सज्जनोंने इसके प्रकाशनमें सहायता दी है उनके भी हम कृतज्ञ हैं।

विनीत—

ऑ. मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला.

मनोनिग्रहमंत्र—



श्रीपरमपूज्य, तपोनिधि, विश्ववंद्य, विद्वच्छिरोमणि
आचार्य श्रीकुंथुसागरजी महाराज.



मनोनिग्रहमंत्र—



श्री. ब्र. शांतमतीजी (ब्र. चिम्माकाबाई) मांगूर.

पूज्य श्री. १०८ अर्जिका माताजी धर्ममतीजी.



धर्मपरायणा, विदुषीरत्न, धर्मशीला,

श्री. ब्र. शांतमतीजीका परिचय.

दक्षिण कर्नाटक प्रांतके प्रसिद्ध शहर बेलगांव जिल्हेमें (कोल्हापूरके पास) मांगूर नामका ग्राम है वहांपर ब्र. चिमकाबाई (शांतमतीजी) का जन्म हुआ। इनके पिताश्रीका नाम नाना झीरले तथा माताश्रीका शुभ नाम काशीबाई। ये दोनों ही पति-पत्नी बडे ही शांतस्वभावी व धर्मात्मा तथा परोपकारी सज्जन थे। इनके सुयोग्य सात संतानोंमें ४ पुत्ररत्न व ३ कन्यारत्न हुए जो कि निम्नप्रकार है—

[१] कल्लप्पा नाना झिरले, [२] गणपति नाना झिरले, [३] लक्ष्मीबाई झिरले, [४] श्रीमान् धर्मपरायण, धर्मनिष्ठ, गुरुभक्त भाऊ नाना झीरले, [५] ब्र. चिम्माकाबाई वर्तमान ब्र. शांतमतीबाईजी, [६] श्रीमती रत्नाबाई, [७] श्रीमान् रामय्या झीरले। इनमेंसे पहिले दो पुत्र तथा एक पुत्रीका स्वर्गवास होगया है। तथा हालमें दो पुत्र तथा दो पुत्री मौजूद हैं। सो उनमेंसे श्रीमती धर्मशीला, विदुषीरत्न, धर्मपरायणा, गुरुभक्त ब्र. चिम्माकाबाईजी [वर्तमान नाम ब्र. शांतमतीबाई] हमारी परिचय नायिका है। इनका शुभ विवाह श्रीमान् भाऊ उपाशेके साथ हुआ था। श्री चिम्माकाजीके पति बडे धर्मात्मा तथा परोपकारी सज्जन थे। परंतु दैवयोगसे उनका अकालमें ही वियोग हुआ। इसलिए श्री चिम्मकाबाईजीको बाल्यकालमे ही वैधव्य प्राप्त हुवा। तथा बाल्यवस्थामें ही मातापितावोंके वियोगका भी असहनीय दुःख हुआ।

घावमे नमक छिडकनेके समान यह पतिवियोगका दारुण दुःख पुनः उपस्थित हुआ। इस निर्दयी कालके क्रूर वज्राघातसे आहत चिमक्काबाई कर्मकी विचित्र गतिपर विचार करती हुई अपने भाई बहिनके पास ही रहने लगी। आपको बाल्यावस्थामें सत्संगति सुसंस्कार आदि मिलनेके कारण आपका चित्त सदा धर्मध्यानमे लगता रहा, और शांत स्वभावसे युक्त होकर व्रत चारित्र आदिमें मग्न रहती थी। और प्रतिनित्य धार्मिक आचरण, सदा स्वाध्याय, शास्त्रश्रवण, साधुवोंका दर्शन तथा पात्रदान आदि कार्य बहुत अनुरागसे करती थी। इस प्रकार धर्माचरणसे कितने ही दिन जानेके बाद पुण्योदयसे आपके गाममें स्व. श्री परमपूज्य विद्वद्वर्य १०८ आचार्य जयकीर्ती महाराज का (दक्षिण) शुभागमन हुआ तथा गुरुवर्यके चारित्र तथा उनके तपप्रभावसे या सदुपदेशसे आपको यथार्थ वैराग्य उत्पन्न हुआ और आजसे सात वर्ष पहिले उन पूज्यश्रीसे शुभ-मुहूर्तपर प्रतिमारूप ब्रह्मचर्य दीक्षामे दीक्षित हुई। श्री पूज्य आचार्यश्रीके संघमें ही रहनेके कारण धार्मिक कार्योंमें रुचिकी वृद्धि चारित्रमें निर्मलता भी हुई। और आपने सदा तेलाव्रत उपवास, सामायिक स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्य करते हुए समय व्यतीत किया। तथा आप यथाशक्ति चतुर्विध दानमें अपनी चंचला-लक्ष्मीको सदुपयोग करती थी। ब्र. शांतमतीबाईजीने भारतके समस्त सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा की है। यथाशक्ति पात्रदान आदिसे अपने हृदयको निर्मल बनाया है। तीर्थयात्रादि पवित्र कार्योंमें आपने दो हजार रुपये व्यय किया है। सर्व धार्मिक कार्योंमें आपने लगभग ४ हजार रु. का

सदुपयोग किया है। आपको श्री परमपूज्य धर्मपरायण, धर्मनिष्ठ, विदुषीरत्न, धर्मशीला श्री १०८ धर्ममूर्ती अम्मा अर्जिका धर्ममतीके संघमें रहते हुए ६ साल हुए हैं तथा आपने माताजीके पास याव-जीवनपर्यंत रहनेका नियम किया है। अर्जिका माताजीके संघका शुभागमन ईडरके सन् १९४१ में चौमासेमें हुआ था। वहांपर श्री परमपूज्य पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय विद्वद्वर्य जगद्वंद्य जगदुद्धारक नरेंद्रपूज्य व्याख्यानवाचस्पति कविवर्य चारित्रचूडामणि १०८ आचार्यशिरोमणि कुंथुसागरजी महाराजके चातुर्मासमें महाराजश्रीके सदुपदेशसे ब्र. विद्याधरजीने दशलक्षणिक १० उपवास किया था। पारणाके समय ब्र. शांतमतीजीने १०१ रुपया आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालामें देकरके स्थाई समासद हुये तथा ४२५ रुपया मनोनिग्रह मंत्र व भावत्रयफलप्रदर्शीके प्रकाशनमें दिया एवं कुल ५२५ का दान दिया। श्री महाराजश्रीके ईडरके चौमासेके समय संघमें श्री १०८ आचार्य कुंथुसागरजी महाराज तथा श्री १०८ आदि-सागर महाराज तथा तथा श्री १०८ अजितसागर महाराज तथा श्री १०५ ऐलक संभवसागरजी महाराज तथा १०८ सुधर्ममतीजी अर्जिकामाता वर्तमान श्री १०८ पूज्य धर्ममतीजी माताजी तथा श्री १०५ ज्ञानमतीजी श्री १०५ विमलमतीजी तथा ब्र. चिमक्काबाई वर्तमान शांतमतीजीबाई तथा ब्र. विद्याधरजी आचार्य कुंथुसागर संघ तथा ब्र. जिनदासजी, ब्र. सुमतीबाईजी तथा ब्र. चमुबेन तथा छटी पतिमाधारी कांतीलाल भावनगर तथा छटी प्रतिमा-धारी शाह चंचलबाई कर्मसद आदि १४ त्यागी विराजमान थे

इस चातुर्मासमे हजारो जैन अजैन जनताका आत्मकल्याण हुआ। पूज्यश्रीके ज्ञानबल तथा तपोबलके प्रभावसे गुजराथके सभी छोटे बडे राजाओंका शुभागमन हुवा। तथा श्रीमान् सर सेठ हुकुमचंदजी तथा रा० ब० धर्मवीर श्रीमान् सेठ भागचंदजी साहब सोनी तथा गुरुभक्त सेठ गंभीरमलजी, सा. पांड्या, श्रीमान् शेठ भोपजी शंभूरामजी, श्रीमान् शेठ पन्नालाल उमाभाई स्टे. जैन, आदि अनेक श्रीमान् गुरुवर्यके दर्शनके लिए पधारे थे तथा पूज्य श्रीके मधुर विद्वत्तापूर्ण सदुपदेशसे जैनसमाज प्रभावित होता था। इस समय उक्त बाईजीका सरल स्वभाव, वात्सल्य, आतिथ्यभाव वगैरे अतीव प्रशंसनीय देखनेमें आये। बाईका समय धर्मध्यानमें ही व्यतीत होता है। अन्य बहिनोंको आपका जीवन अनुकरणीय है। ब्र. शांतमतिजीका यह जीवन-परिचय संक्षेपमें वर्णन किया है। आशा है कि कमसे कम सभी विधवा बहिनें इससे अवश्य शिक्षा-ग्रहण कर अनुकरण करेंगी एवं अपने जीवनको सफल बनायेंगी। शांतमतीजीने यह ग्रंथ पूज्य अर्जिका माताजी धर्ममतीजीके ही खास उपदेशसे अपने ज्ञानवरणीय कर्मक्षयोपशमनार्थ निजद्रव्यसे प्रकाशित कराकर समस्त स्वाध्याय प्रेमियोंको ज्ञानोपार्जनका साधन उपस्थित किया है, एतदर्थ उनके हम कृतज्ञ हैं।

निवेदक:—

ब्र० विद्याधरजी,

आचार्य कुंथुसागर-संघ, मु. डुंगरपुर.

—।—

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

आचार्यवर्य श्रीकुन्थुसागर विरचित

मनोनिग्रह मन्त्र ।

'धर्मरत्न' पं. लालारामजी शास्त्री विरचित

सरल हिंदी भाषाटीका सहित

मंगलाचरण

श्रीदं नत्वा जिनं भक्त्या सुखदान् पूर्वसूरिणः ।
शुद्धौ शान्तिसुधर्मौ च दीक्षाशिक्षावरप्रदौ ॥१॥
मनोनिरोधमंत्रोऽयं ग्रंथः स्वमोक्षसौख्यदः ।
आबालवृद्धजीवानां चित्तसन्तापशान्तये ॥ २ ॥
सर्वात्महितकर्त्रैव चित्ताक्षवशकारिणा ।
लिख्यते स्वात्मतुष्टेन कुंथुसागरसूरिणा ॥ ३ ॥

चन्द्रोज्वल अविकार चन्द्रप्रभके चरण नमि ।
मन निरोध हितकार टीका लिखूं सुहावनी ॥

अर्थ—इस ग्रंथके प्रारंभमें मैं सबसे पहले भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करता हूं। तदनंतर मोक्षसुख देनेवाले समंतभद्र आदि पूर्वाचार्योंको नमस्कार करता हूं तथा शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले दीक्षागुरु आचार्यवर्य श्रीशांतिसागर महाराजको नमस्कार और शुद्ध

हृदयको धारण करनेवाले शिक्षागुरु आचार्यवर्य श्रीसुधर्म-सागर महाराजको नमस्कार करता हूं। इस प्रकार मंगला-चरण करनेके अनंतर समस्त जीवोंका हित करनेवाले इन्द्रिय और मनको वशमें करनेवाले अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें संतुष्ट रहनेवाले ऐसे क्षुल्लक आचार्यवर्य श्रीकुंथुसा-गर स्वामीके द्वारा बालकसे लेकर वृद्ध पुरुषोंतक समस्त जीवोंके हृदयके संतापको शांत करनेके लिये स्वर्ग मोक्षके सुख देनेवाले इस मनोनिरोधमंत्र नामके ग्रंथका प्रारंभ किया जाता है।

भावार्थ—इस संसारमें लक्ष्मी दो प्रकारकी मानी जाती है। एक अंतरंग लक्ष्मी और दूसरी बहिरंग लक्ष्मी। तथा सर्वोत्कृष्ट अंतरंग लक्ष्मी अनंतचतुष्टयरूप लक्ष्मी कहलाती है। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, और अनंतवीर्य ये आत्माके परमोत्कृष्ट चारों गुण अनंतचतु-ष्टय कहलाते हैं। बहिरंग लक्ष्मी बाहरसे दिखाई देनेवाली लक्ष्मी कहलाती है और समवसरणकी सर्वोत्कृष्टविभूति सर्वोत्कृष्ट बहिरंग लक्ष्मी कहलाती है। भगवान् जिनेन्द्रदेव इन दोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं तथा अपने दिव्य उपदेश द्वारा इन्हीं दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके प्राप्त करनेका मार्ग दिखलाया करते हैं। इसीलिये वे परमलक्ष्मीको धारण करनेवाले और परमलक्ष्मीको देनेवाले कहलाते हैं। आचार्य श्री कुंथुसागरस्वामी अपने इस ग्रंथके प्रारंभमें मंगलाचरण करनेके लिये

ऐसे भगवान् जिनेन्द्र देवको नमस्कार करते हैं। मं शब्दका अर्थ पाप है और गळ शब्दका अर्थ नाश करना है। जो पापोंका नाश करदे, विघ्नोंको दूर करदे उसको मंगळ कहते हैं अथवा मंग शब्दका अर्थ सुख है और ल शब्दका अर्थ देता है। जो सुखको देनेवाला हो उसको मंगळ कहते हैं। यह मंगल तीन प्रकार है। मानसिक वाचनिक और कायिक। जो मंगळ मनमें किया जाता है, मनमें ही पंच परमेष्ठीका स्मरण किया जाता है उसको मानसिक मंगळ कहते हैं। जो मंगळ उच्चारण पूर्वक वचनसे किया जाता है उसको वाचनिक मंगळ कहते हैं। तथा शरीरसे नमस्कार करना, हाथ जोडकर मस्तकपर रखना और इस प्रकार भगवान् जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करना कायिक मंगळ कहलाता है।

भगवान् जिनेन्द्रदेवके अनंतर आचार्य महाराज पूर्वाचार्योंको नमस्कार करते हैं। पूर्वाचार्योंको नमस्कार करनेसे यह सिद्ध होता है कि आचार्य कुंथुसागर महाराज इस ग्रंथमें जो कुछ लिखेंगे वह सब पूर्वाचार्योंके अनुसार ही लिखेंगे। पूर्वाचार्योंने भगवान् जिनेन्द्रदेवके उपदेशानुसार ही लिखा है। इस प्रकार यह शास्त्रपरंपरा अविच्छिन्न रूपसे चली आ रही है।

आचार्य श्रीकुंथुसागर स्वामीने अपनी गुरुभक्ति प्रगट करनेके लिये अपने दीक्षागुरु और शिक्षागुरु दोनोंको नमस्कार किया है। उनके दीक्षागुरु जगत्प्रसिद्ध परमशांत

आचार्यवर्य श्रीशांतिसागरस्वामी है और शिक्षागुरु परम तपस्वी और परम विद्वान् स्वर्गीय आचार्य श्रीसुधर्मसागर स्वामी है। यद्यपि आचार्य श्रीकुंथुसागरस्वामी और आचार्य श्रीसुधर्मसागरस्वामी दोनों ही आचार्यवर्य श्री शांतिसागर महाराजके शिष्य हैं तथापि विद्या प्राप्त करनेके कारण आचार्य श्रीकुंथुसागरस्वामी आचार्य श्री सुधर्मस्वामीको शिक्षागुरु मानते हैं। यह उनकी कृतज्ञता और उपकार स्मरण है।

इस ग्रंथमें मनको वश करनेका उपाय बतलाया है। मनको वश करना ही मोक्ष वा अनंत सुखका कारण है। इसीलिए यह ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ कहलाता है।

आगे-मनोनिरोधका उपाय पूछनेके लिए शिष्य प्रश्न करता है।

प्रश्न—कथं चित्तनिरोधो मे क्रियते वद भो गुरो !

अर्थ—हे भगवन् अब कृपा कर यह बतलाइये कि इस चित्तका निरोध किस प्रकार किया जाता है।

उत्तर—यावत्किलाशा भवदा व्यथाढ्या।
परात्समूलान्न च नश्यतीह।
केनाप्युपायेन मनो न ताव—
न्निरुध्यते तापकरं हि नित्यम् ॥ ४ ॥

इस संसारमें यह आशा जन्म मरणरूप संसारको बढानेवाली है और नरक निगोदके महादुःख देनेवाली

है। यह आशा जबतक समूल नष्ट नहीं होती तबतक किसी भी उपायसे सदाकाल संताप उत्पन्न करनेवाले मनका निरोध कभी नहीं हो सकता।

भावार्थ—यह संसारी प्राणी सदाकाल नई नई आशाएं उत्पन्न करता रहता है। आशाएं कभी किसीकी पूर्ण नहीं होतीं तथापि प्रत्येक क्षणमें नई नई अनेक आशाएं उत्पन्न होती रहती हैं। ये आशाएं ही मनको शांत नहीं होने देती। इन आशाओंके पीछे पीछे चलने वाला प्राणी सदाकाल अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है और चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता रहता है। कोई कोई समझदार प्राणी यह जानता है कि ये आशाए कभी किसी की पूर्ण नहीं होतीं तथापि वह अपनी आशाओंको शांत नहीं करता। परंतु यह उसका दुर्भाग्य है। क्यों कि यह सुनिश्चित सिद्धांत है कि जबतक मन शांत नहीं होता, जबतक मनके संकल्प विकल्प वा आशाओंकी परंपरा शांत नहीं होती तबतक मनका परिभ्रमण शांत नहीं होसकता। तथा जबतक मनका परिभ्रमण शांत नहीं होता तबतक मनका निरोध करनेके लिये आशाओंका बंद होना वा मनमें उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के संकल्प विकल्पोंका बंद होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये समस्त भव्यजीवोंको अपने मनमें उत्पन्न होनेवाले संकल्प विकल्पोंको बंद करना चाहिये तथा आशाओंकी परंपरा रोकनी चाहिए। मनको वशमें

करनेका वा मनको निरोध करनेका यही सर्वोत्तम उपाय है।
आगे आचार्य इसी उपायको बतलानेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

मनोनिरोधस्य समासतो हि।
वाऽऽशाविनाशस्य विधिर्मयातः।
स्वर्मोक्षसिद्ध्यै प्रतिपाद्यते च।
दृष्टांतरूपेण मनोहरेण ॥ ५ ॥

अर्थ—अत एव स्वर्ग-मोक्षकी सिद्धिके लिए मनोहर मनोहर दृष्टान्तोंके द्वारा अत्यंत संक्षेपसे मनको निरोध करनेकी विधि निरूपण करते हैं।

भावार्थ—आगेके श्लोकोंमें मनको निरोध करनेकी विधि और आशाको नाश करनेकी विधि बतलाते हैं और वह भी अनेक उदाहरण देकर बतलाते हैं।

शीतोत्थदुःखहरणे ह्यनलप्रयोगः।
सन्तापशांतिकरणे जलचन्दनादेः॥
रोगोपशांतिकरणेऽप्यगदोपचारो।
वस्त्रादिशुद्धिकरणे पयसः प्रयोगः ॥६॥
शत्रोर्निरोधकरणे हि बलप्रयोगः।
क्षेत्रादिरक्षणविधौ वरवृत्तियोगः॥
सद्भिश्चशांतिकरणे समतात्मबुद्धिः।
पंचाक्षवह्निशमने तपसः प्रयोगः ॥ ७ ॥

द्रव्याभिवृद्धिकरणेऽर्चनदानधर्मो ।
द्वेषाग्निशांतिकरणेऽखिलविश्वप्रेम ॥
मानापमानहरणे स्वपदेऽनुरागो ।
विज्ञानलाभकरणे वरशिक्षकादेः ॥
नद्यादिपारकरणे तरणेः प्रयोगो ।
वाऽऽरोग्यवृद्धिकरणे वरवैद्यसंगः ।
शीलाभिवृद्धिकरणे वरवृद्धसंगो ।
दुर्गंधदूरकरणे सुरभिप्रयोगः ॥ ९ ॥
स्वानन्दराज्यकरणे परमात्मबुद्धि- ।
त्रैलोक्यकीर्तिकरणेऽखिलविश्वसेवा ॥
संसारसिंधुतरणे जिननाथसंगो ।
ग्रामादितीर्थगमने रथपादयोगः ॥१०॥
सर्वार्थसाध्यकरणे सकलैक्यभावः ।
कर्मारिनाशकरणे निजबोधबाणः ॥
पूर्वोक्तरीतिरिति सर्वजनप्रसिद्धा ।
स्वेष्टार्थसाध्यकरणे क्रियते हि भव्यैः॥११॥
ज्ञात्वेति शान्तिसुखदः सततं प्रसंगः ।
कार्यो निजात्मनिरतस्य विरागिसाधोः ॥

नैराश्यनिष्ठनिपुणस्य यतो भवेत्त ।
ह्याशानिरोध इति वाऽपि मनोनिरोधः॥

अर्थ – जिस प्रकार शीतसे उत्पन्न हुए दुःखको दूर करनेके लिए अग्निका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार उष्णताका संताप शांत करनेके लिए जल चन्दन आदिका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार रोगोंको शांत करनेके लिए औषधियोंका उपचार किया जाता है, जिस प्रकार वस्त्र शरीर आदिको शुद्ध करनेके लिए जलका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार शत्रुको रोकनेके लिए अपने श्रेष्ठ बलका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार खेतकी रक्षा करनेके लिये कांटोंकी बाढ लगाई जाती है, जिस प्रकार समस्त संसारमें शान्ति स्थापन करने के लिये अपनी बुद्धि समतारूप की जाती है, जिस प्रकार पांचों इन्द्रिय रूपी अग्निको शान्त करनेके लिये श्रेष्ठ तपश्चरण किया जाता है, जिस प्रकार धनादिककी वृद्धिके लिये भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा दान धर्म किया जाता है, जिस प्रकार द्वेषरूपी अग्निको शांत करनेके लिये समस्त संसारमें प्रेम स्थापन किया जाता है, जिस प्रकार मान अपमानको दूर करने के लिये अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें अनुराग किया जाता है, जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त करनेके लिये श्रेष्ठ उपाध्यायोंकी शरणमें जाया जाता है, जिस प्रकार नदी वा समुद्रको पार करनेके लिये छोटी बडी नावोंका

प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार आरोग्यकी वृद्धि करनेके लिये उत्तम वैद्योंका समागम किया जाता है, जिस प्रकार अपने ब्रह्मचर्यको पालन करने और उसकी वृद्धि करनेके लिये वृद्ध पुरुषोंका समागम किया जाता है, जिस प्रकार दुर्गंधको दूर करनेके लिये सुगंधित पदार्थोंका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार अपने आत्मजन्य आनंदको प्राप्त करनेके लिये अपनी बुद्धि परमात्मामें लगाई जाती है, जिस प्रकार तीनों लोकोमें अपनी कीर्ति फैलानेके लिये समस्त संसारकी सेवा की जाती है, जिस प्रकार संसाररूपी समुद्रको पार करनेके लिए भगवान् जिनेंद्रदेवके चरणोंकी सेवा की जाती है, जिस प्रकार किसी ग्राम वा तीर्थको जानेके लिए रथ, घोडा वा अपने पैरोंका प्रयोग किया जाता है, जिस प्रकार समस्त पदार्थोंको सिद्ध करनेके लिए सब मनुष्योंके समानरूप भाव बनाये जाते हैं, तथा जिस प्रकार कर्मोंको नाश करने के लिए अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपके यथार्थ ज्ञानका बाण चलाया जाता है, इस प्रकार ये उदाहरण इस संसार में प्रसिद्ध हैं, इनको सब लोग जानते हैं, और भव्यजीव अपने इष्ट पदार्थोंकी सिद्धिके लिए इनको काममें लाते हैं यही समझकर भव्यजीवोंको अपनी आशाका नाश करनेके लिए और अपने मनको वशमें करनेके लिए अपने आत्मामें लीन रहनेवाले और निराशारूपी परमगुणको धारण करनेवाले वीतराग

मुनियोंका समागम करना चाहिये । वीतराग मुनियोंकी सेवा और संगति करनेसे आशाका भी निरोध होता है और मनका भी निरोध होता है ।

भावार्थ—इस संसारमें प्रत्येक कार्यके अनेक उपाय होते हैं ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसके प्राप्त करनेका कोई उपाय न हो । देखो जब बहुत शीत पडता है तब लोग अग्नि जलाकर शीतका दुःख दूर करते हैं, अग्नि जलानेसे मकान गर्म हो जाता है और शीतका दुःख सर्वथा दूर हो जाता है । अथवा रुई ऊन वा रेशमके वस्त्र पहनकर वा ओढकर भी शीतका दुःख दूर कर लिया जाता है, अथवा धूपमें बैठकर भी शीतका दुःख दूर हो जाता है । इस प्रकार शीतका दुःख करनेके लिये अनेक उपाय हैं । इसीप्रकार उष्णताका संताप दूर करनेके लिये चन्दन लगाया जाता है, चन्दन पिलाया जाता है, जल पिया जाता है वा शीत औषधियोंका प्रयोग किया जाता है, वा पंखासे हवा की जाती है । इस प्रकार उष्णताका दुःख दूर करनेके लिये अनेक उपाय किये जाते है। यदि किसी पुरुषको कोई रोग हो जाता है तो उस रोगको दूर करनेके लिये अनेक प्रकारकी औषधियां दी जाती हैं । ज्वर आनेपर त्रिभुवन कीर्ति देते हैं वायुको शांत करनेके लिये गुग्गुल सोंठ आदिका प्रयोग करते हैं। दाहको शांत करनेके लिये अनार वा जीरा आदिका प्रयोग करते हैं इस प्रकार

आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार अनेक प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार वस्त्रोंको शुद्ध करनेके लिये जलसे धोते हैं रीठा वा क्षारभाग लगाकर धोते हैं शरीको जलसे शुद्ध करते हैं, मकानोंको चूनासे पोतते हैं, गोबरसे लीपते हैं वा जलसे धोते हैं, बर्तनोंको अग्निसे शुद्ध करते हैं, शत्रुओंको रोकनेके लिये अपने शारीरिक बलका प्रयोग करते हैं, मानसिक बलका प्रयोग करते हैं वा वाचानिक बलका प्रयोग करते हैं वा सैन्यबलका प्रयोग करते हैं अथवा धनबलका प्रयोग करते हैं वा कूटनीतिका प्रयोग करते हैं। खेतोंकी रक्षा करनेके लिए कांटोंकी बाढ लगाते हैं मिट्टीकी बाढ लगाते हैं केतकी वा थूवरके पेड लगाते हैं इस प्रकार खेतोंकी रक्षा करते हैं। समस्त संसारमें शान्ति स्थापन करनेके लिए समता बुद्धि धारण करते हैं अर्थात् राग द्वेषका नाश कर देते हैं। शत्रुता वा मित्रता रागद्वेषसे ही होती है रागद्वेषके दूर कर देनेसे शत्रुताका नाश हो जाता है और संसारभरमें परमशांति स्थापन हो जाती है। इसी प्रकार पांचों इन्द्रियोंको दमन करनेके लिए तपश्चरण किया जाता है ध्यान किया जाता है, अनेक प्रकारके उपवास किये जाते हैं वा समितियोंका पालन किया जाता है। इस प्रकार इन्द्रियोंको दमन करनेके अनेक उपाय हैं। धनादिककी वृद्धिके लिए भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा की जाती है। श्रेष्ठ पात्रोंको दान दिया जाता है वा रत्नत्रयरूप धर्मका पालन

किया जाता है। बिना धर्म पालन किये धनकी वृद्धि कभी नहीं हो सकती। धर्म पुरुषार्थ अर्थ पुरुषार्थका कारण है और अर्थपुरुषार्थ कामपुरुषार्थका कारण है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ अनुक्रमसे ही सेवन किये जाते हैं। इसीलिए धनकी वृद्धिके लिए जिन-पूजा वा दानधर्म आदिके कारण बतलाया है। इसी प्रकार द्वेषको दूर करनेके लिए संसारभरसे प्रेम करना बतलाया है। समस्त जीवोंसे समान प्रेम करनेसे कोई भी पुरुष द्वेष नहीं कर सकता, अथवा सबके साथ समान प्रेम करनेवाला पुरुष भी किसीसे द्वेष नहीं कर सकता। इस प्रकार द्वेषको दूर करनेके लिए सबके साथ समान प्रेम करना उपाय बतलाया है। इसी प्रकार मान अपमानको दूर करनेके लिए अपने आत्माके शुद्धस्वरूप में अनुराग करना, समस्त संसारसे संबंध छोडकर आत्मामें लीन होना वा वीतराग अवस्था धारण करना उपाय बतलाया है। जब यह जीव अपने आत्माके शुद्धस्वरूपको अपना समझ लेता है और आत्माके सिवाय अन्य समस्त राग द्वेषका त्याग कर देता है तब मान वा अपमानका ध्यान कभी नहीं हो सकता। मान अपमान तो आत्माका विकार और मोहनीय कर्मका कार्य है। इसलिए वह मोहनीयके शांत होने पर वा आत्मामें लीन होनेपर ही नष्ट हो सकता है इसलिए आत्मामें अनुराग करना ही मान अपमानको दूर करनेका उपाय है। इसी प्रकार ज्ञान

प्राप्त करनेके लिए श्रेष्ठ उपाध्यायोंसे पढना ही कारण है आत्माके स्वरूपको जाननेवाले वा स्वपर विज्ञानको धारण करनेवाले उपाध्याय या अध्यापक ही श्रेष्ठ पाठक कहे जाते हैं तथा ऐसे ही पाठक आत्माका स्वरूप समझाते हुए ज्ञान विज्ञान की वृद्धि कराते रहते हैं। आत्मज्ञानके साथ भौतिक ज्ञान होना ही श्रेयस्कर है। आत्मज्ञानके विना केवल भौतिकपदार्थोंका ज्ञान होना अनेक पापोंका कारण है। अत एव आत्मज्ञानी अध्यापकोंसे ही विद्याध्ययन करना चाहिये। आत्मज्ञान और आत्मश्रद्धासे शून्य अध्यापकोंसे विद्या प्राप्त करना संसार समुद्रमें डूबना है। इसलिए विज्ञान प्राप्त करनेके लिए सम्यग्दृष्टी अध्यापकोंका ही शिष्य बनना चाहिये। नदीको पार करनेके लिए नावोंका प्रयोग किया जाता है, समुद्रोंमें जानेके लिए जहाजोंका प्रयोग किया जाता है, अनेक नदियोंके पुल बना लिये जाते हैं इस प्रकार नद नदियोंको पार करनेके उपाय हैं। सदाकाल आरोग्य बने रहनेके लिए वा आरोग्यता बढानेके लिए वैद्योंका आश्रय लिया जाता है। वैद्योंकी अनुमतिसे ही भोजन पानका प्रबंध किया जाता है और इस प्रकार औषधि तथा पथ्य आहारके सेवनसे आरोग्य की वृद्धि की जाती है। शील वा ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिए वृद्ध पुरुषोंकी संगति की जाती है, अथवा गुरुकुलमें रहा जाता है। गुरुओंके समीप रहना, उनकी आज्ञानुसार

चलना, उनकी सेवा करना आदि ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिए सबसे उत्तम उपाय हैं। दुर्गंधको दूर करनेके लिए सुगंधित पदार्थोंका प्रयोग किया जाता है। अनेक प्रकारके सुगंधित पुष्पोंका इतर वा सार भाग निकालकर उसका प्रयोग किया जाता है अथवा अनेक प्रकारके सुगंधित चूर्णोंका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार दुर्गंधको दूर करनेके लिए अनेक उपाय हैं। इसी प्रकार शुद्धात्मजन्य आत्मसुखका राज्य करनेके लिये अपनी बुद्धि परमात्मामें लीन की जाती है। जो आत्मा आठों कर्मोंसे रहित सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होगया है अथवा घातिया कर्मोंको नाशकर अरहंत अवस्थाको प्राप्त हो गया है उस आत्माको परमात्मा कहते हैं। ऐसे परमात्माकी आराधना करना और जिस प्रकार परमात्माने अपने घातिया और अघातिया कर्मोंका नाश किया है उसी प्रकार अपने कर्मोंको नाश करनेके लिये प्रयत्न करना तपश्चरण करना वा ध्यान करना, परमात्माका चिंतवन करना वा अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका चिंतवन करना आदि आत्माके शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेका उपाय है। इसी उपायसे आत्मजन्य अनंतसुखकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तीनों लोकोंमें अपनी कीर्ति फैलानेके लिये समस्त संसारकी सेवा वा जीवोंका उपकार किया जाता है। यद्यपि धर्मशाला बनवाना, विद्याध्ययनके सामान बना देना, औषधालय खुलवादेना, छात्रालय बनवा देना,

अन्नसत्र खोलदेना आदि कार्य भी कीर्ति के साधन हैं परंतु इन कार्योंसे होनेवाली कीर्ति थोडेसे प्रांतमें ही सीमित रहती है। क्यों कि इन कार्योंसे केवल ऐहिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो महापुरुष आत्मजन्य सुखकी प्राप्तिके लिये सदुपदेश दिया करते हैं वा भव्यजीवोंको मोक्षमार्गमें लगाया करते हैं उनके चरणकमलोंमें इन्द्रादिक देव भी आकर नमस्कार किया करते हैं और ऊर्ध्व लोकतक कीर्ति फैलानेका सर्वोत्कृष्ट यही उपाय है। इसी प्रकार संसाररूपी महासागरसे पार होनेके लिए भगवान् जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंकी सेवा की जाती है। भगवान् जिनेन्द्रदेव स्वयं इस संसारमहासागरसे पार हो गये हैं इसलिए वे ही भगवान् इस संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका उपदेश दे सकते हैं। जो पुरुष स्वयं संसारमें परिभ्रमण कर रहा है वह अन्य जीवोंको पार कैसे कर सकते हैं। भगवान् जिनेंद्रदेव सर्वज्ञ वीतराग हैं। वीतराग और सर्वज्ञ होनेके कारण वे यथार्थ तत्त्वोंका ही उपदेश देते हैं। इसलिए वे मोक्षमार्गका भी यथार्थ उपदेश देते हैं यही कारण है कि उनके उपदेशके अनुसार अपना आचरण करनेसे अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीलिये आचार्योंने संसारसे पार होनेके लिये भगवान् जिनेंद्रदेवकी सेवा करना और उनके उपदेशानुसार अपना चारित्र पालन करना ही सर्वोत्कृष्ट उपाय बतलाया है। इसी प्रकार गाढी

वा रथमें बैठकर एक गांवसे दूसरे गांवतक जाते हैं अथवा तीर्थयात्रा करनेके लिये पैदल यात्रा करते हैं। इस प्रकार एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेके लिये घोड़ा, गाड़ी, हाथी आदि सवारियोंका प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये समस्त समुदायकी एकता वा समस्त जीवोंके समान परिणामोंका प्रयोग किया जाता है अर्थात् समस्त जीवोंके परिणाम जब समानताको धारण कर किसी कार्यके लिए उद्यत हो जाते हैं समस्त जीव मिलकर किसी भी कार्य को करनेमें लग जाते हैं तब उस कार्यकी सिद्धि अवश्य होती है। इसी प्रकार समस्त कर्मोंको नाश करनेके लिये आत्म-ज्ञानरूपी बाणका प्रयोग किया जाता है। विना आत्म-ज्ञानके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता। जब यह जीव अपने आत्माका यथार्थ स्वरूप जान लेता है तब वह अपने आत्मासे भिन्न शरीर वा रागद्वेष मोह आदिका स्वरूप भी जान लेता है और फिर अपने आत्मासे भिन्न रागादिकका सर्वथा त्याग कर वा शरीरादिकका सर्वथा त्याग कर वा शरीरादिकसे ममत्वका सर्वथा त्यागकर अपने आत्माको सबसे भिन्न करलेनेका प्रयत्न करता है। कर्म भी आत्मासे भिन्न हैं। इसलिए वह अपने आत्माके उत्तम क्षमा आदिक धर्म वा रत्नत्रयरूप धर्मके समस्त कर्मोंको नाश कर डालता है। इस प्रकार कर्मोंका नाश करनेके लिए सम्यक्त्वपूर्वक होनेवाला आत्मज्ञान ही

कारण पडता है। इस प्रकार जो ऊपर अनेक उदाहरण बतलाये हैं वे सब उदाहरण सब लोगों में प्रसिद्ध हैं और समस्त भव्य जीव अपने अपने इष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिये उन सब उदाहरणोंको काममें लाते हैं। इसी प्रकार उन भव्य जीवोंको अपनी आशाएं और मनका विरोध करने के लिये वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी सेवा करनी चाहिये। जो वीतराग निर्ग्रंथ मुनि अपने आत्मामें सदा लीन रहते हैं और अपने नैराश्य गुणमें सदा तत्पर रहवे हैं ऐसे मुनियोंकी सेवा करनेसे, उनकी आज्ञानुसार चलनेसे और अत्यंत शान्ति और सुखको देनेवाले उनका समागम करनेसे, उनके समीप बैठने से, उनका उपदेश सुननेसे वा सतत उनके साथ रहनेसे आशाएं भी सब नष्ट हो जाती हैं और मनका भी पूर्ण रीतिसे निरोध हो जाता है। इसका भी कारण यह है कि वे भगवान मुनिराज संसारके सुखोंसे परम विरक्त रहते हैं तथा अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपमें लीन रहते हैं। जिस प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान्की सेवा करता हुआ उनसे उनकी विद्याओंको ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार कोई भी भव्य जीव उन वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा करनेसे वा उनके समीप रहनेसे उनसे नैराश्य गुणको और अन्य समस्त पदार्थोंकी ओरसे अपने मनको हटाकर केवल अपने आत्मामें लीन होनेपर ध्यान गुणको ग्रहण कर लेता है। जिस

प्रकार सेवा करनेसे धनी पुरुष धन देता है, विद्वान् पुरुष विद्या देता है, कलावान् पुरुष कलाएं सिखला देता है उसी प्रकार वीत राग मुनियोंकी सेवा करनेसे ध्यान और नैराश्य वा वैराग्य गुणकी प्राप्ति अवश्य होती है। ध्यान की प्राप्ति होना ही मनका निरोध है और वैराग्य उत्पन्न होना ही आशाओंका नाश करना है। अतएव यह भले प्रकार सिद्ध हो जाता है कि वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी सेवा करनेसे उनके समीप रहनेसे मनका निरोध अवश्य होता है तथा वैराग्यरूप भावना प्रगट होकर समस्त आशाएं नष्ट हो जाती है। आशाओंको नष्ट करने और मनका निरोध करनेके लिए यह सबसे उत्तम और साल साधन है। इस प्रकार अनेक उदाहरणोंद्वारा मनके निरोध करनेका उपाय बतलाया।

आगे-फिर भी आशा और मनका निरोध करनेका उपाय बतलाते हैं।

वस्त्रं वरं मालिनमेव वपुः प्रसंगाद्।
हारोपि चन्दनचयः कुसुमस्य माला॥
स्वानन्दसौख्यरहितो ललनाप्रसंगात्।
सुज्ञोपि संगसहितो भवति प्रमादी ॥ १३ ॥
दुष्टस्य संगकरणात्सुजनोपि पाप्मा।
वेश्यादिसंगकरणाद्धनधर्महानिः॥

मद्यादिपानकरणात्मतिमानहानिः ।
क्षिप्रं घृतं भवति वा तरलं यथाग्नेः ॥१४॥
हिंसादिपापकरणात्परलोकहानि- ।
रीर्ष्यादिद्वेषकरणादिह लोकहानिः ॥
हास्यादिकर्मकरणाल्लघुता भवेद्धि ।
मिष्टं पयोपि विकृतं लवणप्रसंगात् ॥१५॥
आशार्णवश्च तटमेति खलप्रसंगा- ।
ल्लाभो न कोपि भवतीति कदापि बुध्वा ॥
नैराश्यसौख्यनिरतस्य मुनेः सुसंगः ।
कार्यो भवेत्तव यतः सकलार्थसिद्धिः ॥

अर्थ—देखो इस संसारमें इस शरीरके संबंधसे निर्मलवस्त्र भी मलिन हो जाता है तथा इसी शरीरके संबंधसे उत्तम हार भी मलिन हो जाता है, घिसे हुए चन्दनका समूह भी मलिन हो जाता है और इसी शरीर के संबंधसे पुष्पमाला भी मलिन हो जाती है । इसी प्रकार स्त्रियोंके संबंधसे अत्यंत चतुर और ज्ञानी मनुष्य भी आत्मजन्य परम सुखसे रहित हो जाता है और अत्यंत प्रमादी हो जाता है । इसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंकी संगति करनेसे सज्जन पुरुष भी पापी हो जाते हैं, वेश्या आदि दुराचारिणी स्त्रियोंकी

संगतिसे धन और धर्म दोनोंकी हानि होती है, मद्य, भांग आदि के सेवन करनेसे बुद्धि और मान दोनोंकी हानि होती है, अग्निके संबंधसे जमा हुआ घी भी शीघ्रही पतला हो जाता है, हिंसा, झूठ, चोरी कुशील परिग्रह इन पांचों पापोंके करनेसे वा इनमेंसे किसी एक पापके करनेसे परलोक नष्ट हो जाता है, ईर्ष्या वा द्वेष करनेसे यह लोक नष्ट हो जाता है, किसीकी हँसी करनेसे अपनी लघुता होती है और लवणके संबंधसे मीठा दूध भी फटकर बिगड जाता है। इसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंकी संगतिसे आशा रूपी समुद्र उमडकर किनारेतक पहुंच जाता है तथा उन दुष्ट पुरुषोंकी संगतिसे कोई किसी प्रकारका लाभ नहीं होता। यही समझकर भव्यपुरुषोंको इस संसार शरीर और भोगोंसे ममत्वका त्याग कर देना चाहिये और नैराश्य रूप सुखमें तल्लीन हुए मुनियोंकी संगति करनी चाहिये। ऐसे परम मुनियोंकी संगति करनेसे परलोक संबंधी समस्त कार्योंकी सिद्धि हो जाती है।

भावार्थ—वस्त्र कैसा ही बहुमूल्य उत्तम पवित्र और स्वच्छ क्यों न हो तथापि एकवार पहन लेनेसे ही अपवित्र और मलिन हो जाता है। यदि वही वस्त्र बार बार पहिना जाय तो वह अत्यंत मलिन हो जानेके कारण घृणास्पद हो जाता है। इसी प्रकार एकबार पहिना हुआ हार भी अपवित्र हो जाता है, इस शरीर पर लगा हुआ

चन्दन भी अपवित्र और मलिन हो जाता है तथा गलेमें पडी हुई पुष्पमाला भी उच्छिष्ट समझी जाती है। जो पवित्र पुष्पमाला भगवानके चरणारविंदोंपर चढानेके लाई जाती है वह पुष्पमाला यदि एकबार भी सूंघ ली जाय तो फिर वह भगवानके चरणोंपर चढानेके अयोग्य और अपवित्र हो जाता है। कहनेको तो यह मनुष्य शरीर मोक्षका साधन है परंतु इसके संसर्ग मात्रसे समस्त पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं तथा निर्मल पदार्थ मलिन हो जाते हैं। अतएव ऐसे इस शरीरसे ममत्वका सर्वथा त्याग कर वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी सेवा करना और सतत उनके समीप रहना ही इस आत्माका कल्याण करनेवाला है। इसीप्रकार स्त्रियोंका समागम करनेसे वा उनकी संगतिमें रहनेसे आत्मजन्य परमसुख नष्ट हो जाता है। स्त्रियोंकी संगतिमें रहनेवाला पुरुष अपने आत्माके स्वरूपको भूल जाता है। पुण्य पापको भूल जाता है और परमार्थको सर्वथा भूल जाता है। स्त्रियोंकी संगतिमें रहनेवाला विद्वान् पुरुष भी अत्यंत प्रमादी हो जाता है और अत्यंत मोहित होकर महा परिग्रही बन जाता है। इससे सिध्द होता है कि स्त्रियोंकी संगति करनेसे आत्माका पतन होता है उसका अकल्याण होता है और वह अनेक महा दुःखोंका पात्र बन जाता है। इसलिए स्त्रियोंकी संगतिका सर्वथा त्यागकर वीतराग निर्ग्रंथ

मुनियोंकी सेवा करनी चाहिए और उन्हींकी संगतिमें रहकर अपने आत्माका कल्याण कर लेना चाहिए। इसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंकी संगतिमें रहकर सज्जन पुरुष भी महापापी बन जाते हैं। देखो कुम्हारकी लडकीके निमित्तसे मुनि माघनंदि भी कुम्हारोंका काम करने लग गये थे। इसी प्रकार हिंसक मनुष्योंकी संगतिसे यह मनुष्य हिंसक बन जाता है, मद्य पीनेवालोंकी संगतिसे मद्य पीने लगता है, चोरोंकी संगतिसे चोर होजाता है और जुआरियोंकी संगतिसे जूआ खेलने लगता है। यही समझकर भव्य पुरुषोंको अपने आत्माका कल्याण करने और आत्मध्यानकी प्राप्तिके लिए मुनियोंकी संगतिमें ही रहना चाहिए। इसी प्रकार वेश्याओंकी संगति करनेसे यह मनुष्य महा पतित और महा पापी हो जाता है। वेश्याकी संगति करनेसे सेठ चारुदत्तको भी महा दुःख भोगने पडे थे। वेश्यायें अत्यंत अपवित्र अत्यंत घृणित और अत्यंत निंदनीय होती हैं। जो पुरुष ऐसी वेश्याओं की संगतिमें रहते हैं वे पुरुष भी अत्यंत अपवित्र, अत्यंत घृणित, अत्यंत पतित और अत्यंत निंदनीय हो जाते हैं। वेश्याओंकी संगति साक्षात् नरकका द्वार है इनकी संगतिसे धन भी नष्ट होता है और धर्म भी नष्ट होता है। इसलिए ऐसी नीच संगतिका सर्वथा त्यागकर प्रत्येक भव्य जीवको वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी सेवा

करनी चाहिये आत्मकल्याण और यथार्थ सुखका यही सर्वोत्तम मार्ग है। इसी प्रकार मद्यका सेवन करनेसे अथवा मद्यके समान मोहित करनेवाले भांग, चरस, गांजा अफीम आदि मादक पदार्थोंका सेवन करनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो हो जाती है। और अपना मान, बडप्पन, प्रतिष्ठा आदि सब नष्ट हो जाते हैं। मादक पदार्थोंको सेवन करनेवाले पुरुष अपने आत्मका स्वरूप भूल जाते हैं। माता बहिन स्त्री आदि सबको भूल जाते हैं और माताको स्त्री वा स्त्रीको माता समझने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें भला वे अपने मनका निरोध किस प्रकार कर सकते हैं तथा आत्माका कल्याण किस प्रकार कर सकते हैं। इसलिए ऐसे मादक पदार्थोंका सर्वथा त्यागकर तथा आत्माको मोहित करनेवाले मोहनीय कर्मको नष्ट कर वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी सेवामें रहना चाहिये। जिस प्रकार अग्निके निमित्तसे जमा हुआ घी भी शीघ्र ही पतला हो जाता है। उसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके संसर्गसे इस आत्माकी जडता अज्ञानता शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, तथा फिर यह आत्मा अपने आत्मकल्याणमें अवश्य लग जाता है। इसी प्रकार इस संसारमें हिंसा आदि पाप करनेसे पर लोक नष्ट हो जाता है। जो हिंसा करता है वह अवश्य ही नरक निगोदके दुःख भोगता है, तथा वहांसे निकलकर सिंह सर्प आदि की पर्यायें धारण करता हुआ

फिर नरकादिकमें जा पडता है। इस प्रकार हिंसा करना महा पाप है। अत एव हिंसादिक समस्त पापोंका त्याग कर भव्य जीवोंको वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके ही आश्रयमें रहना चाहिए। इसी प्रकार ईर्ष्या वा द्वेष करनेसे यह लोक नष्ट हो जाता है। जिसके साथ ईर्ष्या वा द्वेष किया जाता है वह पुरुष भी अपने ईर्ष्या द्वेषके कारण उसको अनेक प्रकारकी हानि पहुंचानेका प्रयत्न करता रहता है और इस प्रकार उन दोनोंके इस लोक संबंधी समस्त कार्य नष्ट होते रहते हैं। इसलिए ईर्ष्या वा द्वेषका सर्वथा त्यागकर परम पवित्र मुनियोंके आश्रयमें रहना ही इस आत्माका कल्याण करनेवाला है। जो पुरुष दूसरोंकी हंसी करता है वह मनुष्य कभी न कभी अवश्य ही नीचा देखता है। अत एव हंसी, शोक, रति, अरति, भय आदि सबका त्याग कर वीतराग मुनियोंके समीप रहकर आत्म कल्याण करना उचित है। जिस प्रकार लवणके निमित्तसे मीठा दूध भी फटकर बिगड जाता है। उसी प्रकार इस संसारमें रहनेवाले दुष्ट पुरुषोंके निमित्तसे आशारूपी समुद्र उमडकर अपने किनारे तक आ पहुंचता है अर्थात् इस संसारमें रहनेमात्रसे अनेक आशाओंकी वृद्धि होती रहती है। तथा उन संसारी प्राणियोंके निमित्तसे इस जीवको सिवाय अनेक प्रकारके दुःखोंके रंचमात्र भी सुख नहीं मिलता है। आशाएं कभी किसीकी पूर्ण नहीं

होती प्रत्येक प्राणी प्रत्येक क्षणमें अनंत आशाएं उत्पन्न करता रहता है और उनकी एक एक आशा इतनी बडी होती है कि उसके सामने इस समस्त संसारकी विभूति एक अणुके समान जान पडती है। फिर भला समस्त संसारके समस्त प्राणियोंकी आशाएं किस प्रकार पूर्ण हो सकती हैं। यही समझकर आशापात्रका सर्वथा त्यागकर देना चाहिये और आत्माका सर्वोत्कृष्ट कल्याण करनेवाले परमनैराश्य गुणको धारण करनेके लिए तथा फिर यह मन कभी भी आशाओंकी ओर दौड न लगावे और वह मन सदाकाल अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन बना रहे इसके लिए परम वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके समीप रहकर उनकी सेवा करते रहना चाहिये। वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके समीप रहने और उनकी सेवा करनेसे इस लोक सम्बंधी समस्त कार्योंकी भी सिद्धि होती है और परलोक संबंधी समस्त कार्योंकी भी सिद्धि होती है। मुनियोंके आश्रयमें रहनेसे आशाएं सब नष्ट हो जाती है, नैराश्य गुण प्रगट हो जाता है और मनके समस्त संकल्प विकल्प छूटकर मन अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन हो जाता है। जब यह मन आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन हो जाता है तब शुद्ध आत्माके ध्यानकी प्राप्ति होती है और फिर उस ध्यानसे समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है तथा मुक्त अवस्थाके अनंत सुख प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार मुनियोंकी

सेवा करनेसे परमोत्कृष्ट पदार्थकी प्राप्ति वा सिद्धि हो जाती है। इसलिये समस्त भव्य जीवोंको अपनी इन्द्रियां और मन वश करनेके लिये वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके ही समीप रहकर आत्म कल्याण करना चाहिये। आत्माके कल्याण करनेका सर्वोत्कृष्ट मार्ग यही है।

आगे फिर भी अनेक उदाहरण देकर मनको वश करनेके लिये उपदेश देते हैं।

दृष्टं यथा न च विषे ह्यसुरक्षणत्वं ।
चौरे यथा सुजनता न खले नरत्वम् ॥
निम्बे न वा मधुरता मृदुता न काष्ठे ।
वेश्याजने न कुगतौ शुचिता सुखत्वम् ॥१७॥
सिंहाहिवृश्चिकचयेऽपि दया न धर्मो ।
जारस्य नेत्रयुगले स्थिरता न वाते ॥
कामाग्निदग्धपुरुषे समता न शत्रौ ॥
ह्यसौ रवौ हतमतौ कृपणे न शान्तिः ॥१८॥
आशाग्निदग्धमनुजे चलचित्तसाधौ ।
दृष्टो न कोऽपि सुगुणो हि तथेति बुद्ध्वा ॥
नैराश्यसौख्यनिरतस्य मुनेः सुसंगः ।
कार्यो भवेदपि यतो हि तवेष्टसिद्धिः ॥१९॥

अर्थ—जिस प्रकार किसी भी विषमें जीवोंके प्राणोंकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य नहीं है, जिस प्रकार चोरमें सज्जनता नहीं है, दुष्ट मनुष्योंमें मनुष्यपना नहीं है, नीमके वृक्षमें मधुरता नहीं है, काष्ठमें कोमलता नहीं है, वेश्याओंमें पवित्रता नहीं है, नरकादिक कुगतियोंमें सुख नहीं है, सिंह, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक जीवोंमें दया धर्म नहीं है, व्यभिचारी मनुष्योंके नेत्रोंमें स्थिरता नहीं, वा वायुमें स्थिरता नहीं है, कामरूपी अग्निसे जले हुए पुरुषोंमें समता नहीं है, और जिस प्रकार शत्रुमें, अग्निमें, सूर्यमें, हतबुद्धि पुरुषमें और कृपण मनुष्य में शांति नहीं है उसी प्रकार आशारूपी अग्निसे जिनका हृदय जल रहा है ऐसे मनुष्योंमें तथा जिनका हृदय चंचल हो रहा है ऐसे साधुओंमें कोई भी श्रेष्ठगुण दिखाई नहीं देते हैं यही समझकर नैराश्यगुणमें लीन रहनेवाले मुनियोंका ही समागम करना चाहिये। ऐसे मुनिराजोंकी संगति करनेसे वा उनकी सेवा करनेसे तुम समस्त भव्य जीवोंकी इष्ट सिद्धि हो सकती है।

भावार्थ—संखिया, सिंगिया, धतूरा आदि विष कहलाते हैं। यद्यपि शुद्ध किये हुए संखिया सींगिया धतूरे आदिसे प्राणरक्षा होती है। परंतु शुद्ध किये हुए संखिया, सींगिया, धतूरे आदिको औषधियां कहते हैं। फिर उनको विष कोई नहीं कहता। विना शुद्ध किये हुए संखिया सींगिया धतूरे आदि ही विष कहलाते हैं और इन विषोंमें प्राणोंकी

रक्षा करनेकी सामर्थ्य कभी नहीं हो सकती। इसी प्रकार चोरमें यदि सज्जनता हो तो वह कभी भी चोरी नहीं कर सकता। क्यों कि लोग प्राण देकर भी धनकी रक्षा करते हैं इसलिए धन प्राणोंसे भी बढकर माना जाता है। सज्जन पुरुष ऐसे प्राणके समान धनकी चोरी कभी नहीं कर सकता अथवा जो ऐसे धनकी चोरी करता है वह सज्जन कभी नहीं हो सकता। इसलिए चोरमें सज्जनता कभी नहीं होती। इसी प्रकार दुष्ट मनुष्योंमें दुष्टता होती है मनुष्यता नहीं होती। यदि उनमें मनुष्यता हो और वह मनुष्योचित कार्य करता हो तो वह दुष्टता कभी किसी के साथ नहीं कर सकता। इससे सिद्ध होता है कि दुष्ट मनुष्योंमें मनुष्यता कभी नहीं होती। इसी प्रकार नीमके वृक्षमें, मधुरता नहीं होती, क्यों कि नीम कडवा ही होता है। उसकी जड छाल गुदे लकडी पत्ते आदि सब कडवे होते हैं, तथा सूखी लकडीमें कोमलता नहीं होती। सूखी लकडी नवानेसे टूट जाती है परंतु नम्र नहीं होती। इसी प्रकार वेश्याओंमें पवित्रता नहीं होती। क्यों कि वेश्याएं व्यभिचारिणी होती है, और व्यभिचारिणी स्त्रियोंमें कभी पवित्रता नहीं हो सकती। वेश्याएं और वेश्याओंकी संगति करनेवाले पुरुषोंका सूतक पातक ही कभी नष्ट नहीं होता। अतएव उनमें पवित्रता भी कभी नहीं हो सकती। वेश्याएं सदाकाल मद्य मांस का सेवन करती हैं वा मद्य-

मांस सेवन करनेवाले पुरुषोंकी संगति करती हैं वा नीच पुरुषोंकी संगति करती हैं इसलिये भी उनमें पवित्रता कभी नहीं हो सकती इसी प्रकार नरकमें सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। नरकमें तो क्षण मात्रको भी कभी सुख नहीं मिलता और न निगोदमें कभी जन्म मरणसे अवकाश मिलता है। तथा पशुओंमें भी अनेक प्रकार के महादुःख देखे जाते हैं। इसलिये इन कुगतियोंमें कभी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार सिंह, सर्प, बिच्छू, चीता, बाघ भेडिया आदि घातक पशुओंमें न कभी दया दिखाई पडती है और न वे अधिकतररूपसे किसी धर्मका पालन कर सकते हैं। इसालिये हिंसक पशुओंमें दया धर्म कभी नहीं हो सकती। हिंसक पशु तो सदाकाल हिंसा करने की ही खोजमें रहते हैं, इसालिये उनमें कभी भी दया धर्म नहीं हो सकता। इसी प्रकार व्यभिचारी पुरुषके नेत्रोंमें कभी स्थिरता नहीं हो सकती। व्यभिचारी पुरुषोंके नेत्र सदाकाल चंचल रहते हैं। ऐसे पुरुष नवीन नवीन व्यभिचार करनेकी खोजमें रहते हैं। इसलिये उनके नेत्रोंमें स्थिरता कभीं नहीं हो सकती। तथा वायु भी सदा चलती ही रहती है। वायु कभी भी स्थिर नहीं रह सकती। इसी प्रकार जिस पुरुषका हृदय कामसेवनकी अग्निसे जल रहा है उसके हृदयमें समतारूप परिणाम कभी नहीं हो सकते। जिस पुरुषके हृदयमें काम सेवनकी

इच्छा होती है उसका हृदय सदाकाल जलता रहता है और उसमें नवीन नवीन इच्छाएं उत्पन्न होती रहती हैं। इसलिए उस हृदयमें समता वा शांत बुद्धिका कभी प्रवेश ही नहीं हो सकता। इसी प्रकार शत्रु कभी शान्त नहीं होता. सूर्य अग्नि कभी शीतल नहीं, होते कृपण कभी शान्त नहीं होता और जिसकी बुद्धि मारी गई है उसके हृदयमें कभी शान्ति नहीं होती। इस प्रकार ऊपर अनेक उदाहरण बतलाये हैं और उनमें कहे हुए गुण कभी नहीं होते। विषमें प्राणरक्षा, चोरमें सज्जनता, दुष्टमें मनुष्यता, नीममें मधुरता, काष्ठमें कोमलता, वेश्याओंमें पवित्रता, नरकमें सुख, हिंसक जीवोंमें दयाधर्म, व्यभिचारियोंके नेत्रोंमें और वायुमें स्थिरता, कामी पुरुषोंमें समता, और शत्रु, सूर्य, अग्नि, कृपण आदिमें शांति नहीं होती उसी प्रकार आशारूपी अग्निसे जले हुए मनुष्योंमें कोई गुण नहीं होता तथा चंचल चित्तको धारण करनेवाले साधुओंमें भी कभी कोई श्रेष्ठ गुण नहीं होता। यही समझकर जो वीतराग निर्ग्रंथमुनि सदाकाल नैराश्यगुणमें लीन रहते हैं ऐसे मुनियोंकी संगतिमें ही रहना चाहिये। ऐसे महा मुनियोंकी संगतिमें रहनेसे उनकी सेवा सुश्रूषा करनेसे वा उनकी आज्ञानुसार चलनेसे नैराश्य गुण प्रगट होता है, मनका निरोध होकर ध्यान की प्राप्ति होती है, ध्यानकी प्राप्ति होनेसे कर्मोंका नाश

होता है और कर्मोंका नाश होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार वीतराग मुनियोंकी सेवा करनेसे मोक्षरूप परम पुरुषार्थकी सिद्धि हो जाती है। और संसारमें यही सर्वोत्कृष्ट इष्ट पदार्थ है। यही समझकर भव्यपुरुषोंको सदाकाल वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके ही आश्रयमें रहना चाहिये। आत्माके कल्याण करनेका यही सर्वोत्कृष्ट मार्ग है।

आगे कुसंगातिके त्याग करनेका उपदेश देते हैं।

जिह्वापि जन्तोः सजलेव दृष्ट्वा।
स्याद्भक्षयन्तं मनुजं च चिंचाम्॥
छिन्दन्तमेवापि नरं च कन्दं।
नेत्रं स्वभावात्सजलं यथा स्यात्॥ २०॥
च्युताः स्वभावाद्यपि केऽपि जीवाः।
संसर्गतो मोहिनृणां कुनार्यः॥
भूता भवन्त्येव च दुःखपात्रा।
ज्ञात्वेति हेयो भुवि तत्प्रसंगः॥ २१॥

अर्थ—जो मनुष्य इमली खा रहा है उसको देखकर दूसरे मनुष्योंकी जीभमें पानी उतर आता है। इसी प्रकार जो मनुष्य गाजर सकरकंद आदिका छेदन भेदन करता है उसको देखकर दूसरे मनुष्योंके नेत्रोंमें

स्वभावसे ही जल आजाता है। इसीप्रकार जो मनुष्य अपने स्वभावसे च्युत होजाते हैं अथवा कामादिकसे मोहित हुए मनुष्योंके संसर्गसे जो व्यभिचारिणी स्त्रियां अपने स्वभावको छोड देती है वे पुरुष तथा स्त्रियां दोनो ही सदाकाळ दुःखी होते रहे हैं और सदाकाळ होते रहेंगे। यही समझकर इस संसारमें ऐसे मनुष्य व स्त्रियोंका संसर्ग सदाके लिए छोड देना चाहिए।

भावार्थ—इन श्लोकोंमें आचार्य यह दिखला रहे हैं कि दुष्ट मनुष्योंकी संगतिसे तो दुःख होता ही है किंतु जिस प्रकार इमली खानेवाले मनुष्यको देखनेमात्रसे देखनेवालेकी जीभमें पानी आजाता है, उसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंके थोडेसे संसर्गसे ही महादुःखकी प्राप्ति होती है। देखो हीराकी कनी बहुत ही छोटी होती है तथा देखनेमें भी अत्यंत सुंदर होती है तथापि पेटमें पहुंचनेपर वह आंतोंको काटकर मनुष्यको मार देती है। इसी प्रकार व्यभिचारी पुरुषोंकी संगतिसे कभी कभी शीलवती स्त्रियां भी अपना शील खो देती हैं अथवा अपने शील स्वभावसे च्युत हुए मनुष्य भी अपने शीलको खोकर महादुःखी होते हैं। थोडेसे विषके संसर्गसे ही यह मनुष्य अपने प्राण खो देता है। दुष्ट पुरुषोंकी संगतिसे कभी किसी प्रकार भी सुख नहीं मिल सकता। अत एव भव्यजीवोंको सबसे पहले दुष्ट मनुष्योंकी संगतिका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

जबतक इस दुष्ट संगतिका त्याग नहीं होता तब तक यह जीव श्रेष्ठ मनुष्योंकी संगतिमें वा वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओं की संगतिमें कभी नहीं बैठ सकता तथा वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंकी संगतिके विना यह जीव अपने मनको कभी वश नहीं कर सकता और मनको वशमें किये विना दुःखोंसे कभी नहीं छूट सकता अथवा कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। अत एव इन सब बातोंको समझकर भव्यजीवोंको सबसे पहले दुष्ट पुरुषोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये और फिर निर्ग्रंथ गुरुओंके शरणमें रहकर आत्मकल्याण कर लेना चाहिये। यही भगवान् जिनेन्द्र देवका सदुपदेश है।

आगे फिर भी इसी बातको दिखलाते हैं—

वस्तुस्वभावात्सहवासयोगाद्।
यादृक् पदार्थाश्च नृणां समीपे॥
भवन्ति भावा इति तादृशो हि।
प्रोक्तं प्रमाणाद् गुरुकुन्थुनाम्ना॥२२॥

अर्थ—जिन मनुष्योंके समीप जैसे पदार्थोंका संबंध रहता है उन पदार्थोंके संबंधसे उनके परिणाम भी वैसे ही हो जाते हैं। यह उन पदार्थोंका स्वभाव है, जिस प्रकार दुष्ट मनुष्योंके संबंधसे दुष्टता आजाती है उसी प्रकार

वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके संबंधसे यह जीव जगत्पूज्य जगद्गुरु बन जाता है। यही समझकर प्रत्येक भव्य जीवको अपनी संगति सर्वोत्कृष्ट रखनी चाहिये। संसार की समस्त संगतियोंका त्याग कर परम वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके आश्रयमें ही रहना चाहिये। वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंका आश्रय साक्षात् मोक्षका साधन है। ऐसा आचार्यवर्य श्री कुंथुसागर स्वामी कहते हैं।

इति श्रीमदाचार्यप्रवर श्रीकुंथुसागरविरचिते
मनोनिग्रहमंत्रग्रंथे सत्पुरुषसमागम
फलवर्णनो नाम प्रथमोध्यायः।

श्री परमपूज्य आचार्यवर्य श्री कुंथुसागर विरचित
मनोनिग्रहमंत्र नामके ग्रंथकी 'धर्मरत्न'
पं. लालाराम शास्त्री विरचित सरल
हिन्दी भाषा टीकामें सज्जन पुरुषों
के समागमके फलको वर्णन
करनेवाला यह पहला
अध्याय समाप्त।

—=—

दूसरा अध्याय

आगे मनोनिरोध करनेके लिए सर्वोत्कृष्ट योग्य विधि लिखते हैं।

आशाग्नितापशमितुं यदि चेत्तवेच्छा।
रोद्धुं तथा सपदि चित्तमपीह दुष्टम्॥
स्वानन्दसौख्यनिरतस्य मुनेः प्रसंगः।
कार्यो विहाय सकलं विषयं विवादम्॥२३॥

अर्थ—हे भव्य! यदि तू अपनी आशारूपी अग्निको शांत करना चाहता है और शीघ्र ही इस दुष्ट चित्तकी चंचलताको रोकना चाहता है तो तुझे सबसे पहले समस्त विषयोंको और विवादोंको छोड़कर अपने आत्मजन्य सुखमें लीन रहनेवाले मुनियोंका ही समागम करना चाहिये।

भावार्थ—यह बात पहले भी कह चुके हैं और भव्य जीवोंको और अधिक समझानेके लिए फिर भी कहते हैं कि यह आशा एक प्रकारकी अग्नि है, जिस प्रकारसे अग्नि समस्त ईंधनको जला देती है उसी प्रकार यह आशा रूपी अग्नि भी संसारके समस्त प्राणियोंको जला रही है। इसी प्रकार यह मनकी चंचलता भी अनेक प्रकारकी मान-

सिक व्यथाओंको उत्पन्न करती रहती है। अत एव यदि भव्यजीव इन दोनों दुःखके कारणोंको दूर करना चाहते हैं और आत्मजन्य सुखकी प्राप्ति करना चाहते हैं तो उनको सबसे पहले समस्त विषय कषायोंका त्याग कर देना चाहिये तथा समस्त प्रकारके वाद विवादोंका त्याग कर देना चाहिये और संसारकी समस्त आशाओंका त्याग कर तथा मनकी चंचलताको पूर्ण रीतिसे रोककर केवल अपने आत्मामें लीन रहनेवाले वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके ही आश्रयमें रहना चाहिये, उनकी ही सेवा सुश्रूषा करना चाहिये और सदाकाल उन्हींकी आज्ञाका पालन करते रहना चाहिये। परम मुनियोंके सन्निकट रहनेसे आशाएं भी सब नष्ट हो जाती हैं और यह चंचल मन भी अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन हो जाता है। आत्माके शुद्ध स्वरूपमें मनके लीन होनेसे कर्मोंका नाश हो जाता है और परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। अत एव संसारके समस्त विषयोंका त्यागकर मुनियोंके आश्रयमें वा उनकी सेवामें रहना ही सर्वोत्कृष्ट आत्मकल्याणका मार्ग है। और यही प्रत्येक भव्यजीवको ग्रहण कर लेना चाहिये।

आगे एक शिष्य अपने गुरुके सामने अपनी एक शंका रखता है और वह इस प्रकार है।

निषिध्यते त्वया संगः केनाचित्कथ्यतेऽपि कौ ।
कथं मे दृश्यते रोधो मिथो बोधाय कथ्यताम्॥२४।
श्रीवितरागधर्मस्यानभिज्ञाः केचिदेव ये ।
मूर्च्छैव संगचिह्नं कौ केवलं कथयन्ति ते ॥२५॥
तदर्थं नैव जानन्ति यतः कुर्वन्त्यनर्थकम् ।
केचिदन्येऽपि विद्वांसो ब्रुवन्तीत्याविवेकतः ॥ २६ ॥
भुंजन्ते संसृतौ सौख्यमुदासीनाः सदा यदि ।
कुर्वन्ति कर्मबंधं न ह्येवं मतांतरं मतम् ॥ २७ ॥
स्वच्छन्दपक्षपुष्ट्यर्थं प्रचारं पापवर्द्धकम् ।
जन्ममृत्युजरामूलं कुर्वन्त्येव ह्यनर्थकम् ॥२८॥
यत्रातो तत्र लोकेऽस्मिन् हाहाकारः प्रदर्श्यते ।
तच्छान्त्यै सदुपायोऽयं लिख्यते धीमता ह्यधः॥२९॥

अर्थ—इस संसारमें कोई शिष्य कहता है कि हे भगवन्! आप संग वा परिग्रहका निषेध करते हैं। परंतु वह परिग्रह किस प्रकार रुक सकता है, यह बात परस्पर समझनेके लिए बतलाइये। इस वीतराग धर्मके स्वरूपको न जाननेवाले कितने ही लोग यद्यपि मूर्च्छा वा ममत्व बुद्धिको ही परिग्रहका लक्षण बतलाते है परंतु वे लोग इस

ममत्व बुद्धिका अर्थ नहीं जानते और इसीलिए वे अनेक प्रकारके अनर्थ करते रहते हैं। तथा कितने ही विद्वान् पुरुष भी अपने मिथ्याज्ञानके कारण उस ममत्वबुद्धिका अर्थ विपरीत बतलाकर अनर्थ करते हैं। वे कहते हैं कि "यदि उदासीन होकर संसारके सुखोंका अनुभव किया जाय तो उस सुखके अनुभव करनेसे कर्मोंका बंध कभी नहीं होता। इस प्रकार वे विपरीत बुद्धिको धारण करनेवाले विद्वान् लोग अपना एक मतान्तर स्थापन करते हैं। तथा अपने उस स्वतंत्रपक्षकी पुष्टि करनेके लिए वे जन्म जरा मरण आदिको बढानेवाले और अनेक प्रकारके पापोंकी वृद्धि करनेवाले इस नवीन मतका प्रचार करते हैं और इस प्रकार अनेक प्रकारके अनर्थ उत्पन्न करते हैं। परंतु जहां जहां ऐसे अनर्थ होते हैं वहां वहां हाहाकार ही दिखाई देता है। अत एव उस हाहाकार और अनर्थोंको शान्त करनेके लिए अत्यंत विद्वान् ऐसे आचार्य श्रीकुंथुसागर स्वामी नीचे लिखे अनुसार सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाते हैं।

भावार्थ—मूर्च्छा वा ममत्वबुद्धि परिग्रहका चिह्न है यह बात तो ठीक है। परंतु उस मूर्च्छा वा ममत्व बुद्धिका अर्थ समझना कठिन है। कोई कोई श्वेतांबर साधु परिग्रह तो रखते हैं परंतु कहते यह हैं कि 'हम लोग जो परिग्रह रखते हैं उसमें ममत्वबुद्धि नहीं रखते। विना ममत्वके ही परिग्रह रखते हैं। इसीलिए हम लोगोंको उस

परिग्रह रखनेसे कोई किसी प्रकारका कर्मबंध नहीं होता। और इसीलिए हम साधु लोग (श्वेताम्बर साधु) परिग्रह रखते हुए भी अपरिग्रही साधु कहलाते हैं।" परंतु आचार्य कहते हैं कि यह उनका अज्ञान है। तथा ऐसे अज्ञानसे अनेक प्रकारके अनर्थ होते हैं। जहांपर विषयोंकी आशा बनी रहती है और इन्द्रियोंका निग्रह नहीं होता वहींपर परिग्रह रक्खे जाते हैं और जहांपर परिग्रह होते हैं वहांपर अनेक प्रकारके अनर्थ हाहाकाररूप अनेक प्रकारके दुःख और मानसिक पीडाएं हुआ करती हैं। वे दुःख मानसिक पीडाएं वा अनर्थ न हों इसके लिए आचार्य आगेके श्लोकोंमें उपाय बतलाते हैं॥

देहोऽपि मे नैव भवेत्कदापि ।
सदा समं गर्भत एव वासी ॥
देहादिसम्बन्धिजनस्य लोकेऽ— ।
लंकारवस्त्रस्य कथाति कास्ति ॥ ३० ॥
ज्ञात्वेति देहादिधनस्य मोहं ।
त्यक्त्वात्मशुद्धिं कुरु विश्वशान्तिम् ॥
स्यात्ते यतो मुक्तिरमापि दासी ।
भावोऽस्ति सूरेर्वरकुंथुनाम्नः ॥ ३१ ॥

अर्थ—देखो यह जीव जब गर्भमें आता है तभीसे यह शरीर इस जीवके साथ रहता है। परंतु गर्भ अवस्थासे ही साथ रहनेवाला यह शरीर अपना वा इस आत्माका कभी नहीं हो सकता। जब यह ऐसा सदासे साथ रहने वाला शरीर ही अपना नहीं होता है तो फिर इस शरीरसे संबंध रखनेवाले माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री पुत्र आदि अपने कब हो सकते हैं ? तथा वस्त्र अलंकार आदि सर्वथा परपदार्थ अपने कब हो सकते हैं। अर्थात् अपने कभी नहीं हो सकते। यही समझकर भव्य जीवोंको शरीर धन आदि सबका मोह छोडकर अपने आत्माको शुद्ध करना चाहिये। अपने आत्माको शुद्ध कर लेनेसे ही इस संसारमें शान्ति प्राप्त हो सकती है और आत्माको शुद्ध कर लेनेसे ही मोक्षरूपी लक्ष्मी अपनी दासी बन जाती है। ऐसा आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर स्वामीका अभिप्राय है।

भावार्थ—आचार्य ऊपर लिखी हुई शंकाका समाधान करते हैं कि जब गर्भसे साथ रहनेवाला यह शरीर अपना नहीं है तो फिर वस्त्र आदि बाह्य परिग्रह अपना कैसे हो सकता है ? श्वेताम्बर साधु जो वस्त्रादिक परिग्रह रखते हुए भी अपनेको अपरिग्रही मानते हैं यह उनकी अज्ञानता और मिथ्याबुद्धि है। परिग्रह रखनेसे अहिंसा महाव्रत कभी नहीं पल सकता। क्यों कि उन वस्त्रोंको धोना भी पडता है। यदि न धोये जायं तो उनमें

अनेक जीव पड जाते हैं और यह सब हिंसा उन वस्त्रादिक रखनेवाले साधुओंको लगती है। इसलिए यही कहना पडता है कि श्वेताम्बर लोग परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा वा ममत्वबुद्धि कहते हैं। परंतु उस ममत्व बुद्धिका यथार्थ अर्थ नहीं समझते। यदि वे ममत्वबुद्धिका अर्थ समझते तो उन्हें शरीरसे भी ममत्व छोड देना चाहिये क्यों कि शरीर भी पर है जड है, पौद्गलिक है और आत्मासे सर्वथा भिन्न है। जब साधु लोग अपने शरीरसे भी ममत्वका त्यागकर देते हैं फिर भला वे वस्त्रादिक परिग्रह किस प्रकार रख सकते हैं अर्थात् कभी नहीं रख सकते। अतएव साधु होकर वस्त्रादिक परिग्रह रखना अनर्थ है, हिंसाका प्रचार करना है और पापको बढाना है। जो वीतराग निर्ग्रंथ साधु तिल तुप मात्र भी परिग्रह नहीं रखते। और न कभी शरीरसे ममत्व रखते हैं। अपने शरीरसे भी ममत्वका त्यागकर केवल अपने आत्मामें लीन रहते हैं तथा रागद्वेषको नष्टकर आत्माको शुद्ध करनेमें लग जाते हैं ऐसे परमशांत वीतराग साधु अवश्य ही मोक्षरूप लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं। ऐसा आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर स्वामीका सदुपदेश है। रागद्वेषको दूर करनेसे ही मूर्च्छा वा परिग्रहका त्याग होता है। जबतक रागद्वेष है तबतक परिग्रहका त्याग कभी नहीं हो सकता। अतएव भव्य जीवोंको सबसे पहले रागद्वेषका सर्वथा त्यागकर

शरीरसे भी ममत्वका त्याग कर देना चाहिये, और अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन होकर मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये। अपने आत्माका कल्याण करनेके लिए यही सर्वोत्तम उपाय है।

आगे फिर भी इसी बातको दिखलाते हैं।

यत्र नो द्वेषरागाग्निदहनं वस्तुनो विना।
स्वप्नेपि न वसेद्दुष्टः पंचाक्षविषयो भुवि ॥३२॥
यः परवस्तु गृह्णाति करोति तद्रतिं सदा॥
अतो निश्चीयते रागी द्वेषी स दुःखभाग्नरः॥३३

अर्थ—जहांपर परिग्रहके सर्वथा अभाव होनेसे राग द्वेषकी जलन वा अग्नि नहीं है वहांपर इस संसारमें ये दुष्ट पंचेन्द्रियोंके विषय स्वप्न में भी कभी नहीं ठहर सकते। तथा जो मनुष्य पर पदार्थोंको ग्रहण करता है और उन पदार्थोंमें प्रेम करता है वह मनुष्य अवश्य ही राग द्वेषको धारण करता है और उस राग द्वेषके कारण महा दुखी होता है। ऐसा निश्चय करना पडता है।

भावार्थ—परिग्रहका मूलकारण राग द्वेष है अथवा यों कहना चाहिए कि राग द्वेष ही परिग्रह है। जहां जहां राग द्वेष है वहां वहां ममत्व परिणाम अवश्य है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि जहां जहां ममत्व परिणाम नहीं है वहां वहां राग द्वेष भी नहीं है वा जहां जहां पर राग

द्वेष भी नहीं है वहां पर ममत्व परिणाम भी नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि राग द्वेष और ममत्व परिणाम दोनों एक है। इसलिए ही आचार्यवर्य राग द्वेष को ही परिग्रह कहते हैं। तथा जहां पर राग द्वेष नहीं है वहांपर पंचेन्द्रियोंके विषय भी कभी नहीं फटकते हैं। विना रागके पंचेन्द्रियोंके विषय कभी उत्पन्न ही नहीं हो सकते हैं। इसलिए रागद्वेषका त्याग करना ही आत्माका कल्याण करना है। जो पुरुष अपने रागके कारण परपदार्थोंको ग्रहण करता है, धन संपत्ति आदिको ग्रहण करता है वा पुत्र, मित्र, कलत्र, भाई, माता, पिता आदिसे राग रखता है उनको अपनाता है, वा किसीसे द्वेष कर उसकी हानि करता है, उसको दुःख पहुंचाता है ऐसे मनुष्योंके राग द्वेषकी तीव्रता अपने आप सिद्ध होता है, तथा ऐसे मनुष्य उस तीव्र रागद्वेषके कारण नरक निगोद आदि कुगतियोंमें अनेक प्रकारके महादुःख भोगते हैं। यही समझकर सबसे पहले रागद्वेषको घटानेका और समता धारण करनेका अभ्यास करना चाहिये। जितने जितने अंशमें रागद्वेष घटता जाता है उतने ही उतने अंशमें कर्मबंध घटता जाता है। इस प्रकार अभ्यासके द्वारा जब समस्त राग द्वेषका अभाव हो जाता है तब नवीन कर्मबंधका अभाव हो जाता है और ध्यानके द्वारा पहलेके कर्मोंका सर्वथा नाश होकर शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

आगे इसी विषयको स्पष्ट रीतिसे बतलाते हैं।

येनांशेन च गृह्णात्यल्पवस्तु विषयादिकम् ।
तेनांशेन भवेत्तस्य रागो वा पूर्वकारणः ॥३४॥
यावांस्तप्तो ह्ययः पिंडस्तावान् वा स पिबेत्पयः ।
यथा वस्तु दहेन्नैव स्वस्थो वन्हिः कदापि कौ ३५
पूर्वोक्तसत्यसिद्धांतं ज्ञात्वेति सौख्यदं सदा ।
गृह्णन्तु स्वहठं त्यक्त्वा शान्तिर्लोके भवेद्यतः॥ ३६

अर्थ—देखो यह संसारी भव्यजीव थोडेसे इंद्रियोंके विषयरूप पदार्थोंको जितने अंशमें ग्रहण करता है उतने ही अंशमें उसके रागका उदय समझा जाता है तथा वह रागका उदय उसके पहलेके संचित कर्मोंके उदयसे होता है। लोहका गोळा जितना गर्म होता है वह पानीमें डाळनेपर उतना ही पानी सोखता है। यदि वह गर्म नहीं होता तो वह पानी नहीं सोखता। जैसे अग्नि यदि अपने ही रूपमें बनी रहेगी किसी ईंधन आदिमें नहीं पडेगी तो वह अग्नि किसीको नहीं जळा सकती। यह सिद्धांत समस्त जीवोंको सुख देनेवाळा है तथा यही सिद्धांत यथार्थ वा सत्य है। इसीळिए प्रत्येक भव्यजीवको यह बात समझकर और अपना हठ छोडकर इसी सत्य सिद्धांतको ग्रहण करना चाहिये। क्यों कि इस सत्य

सिद्धांतको ग्रहण करनेसे ही समस्त संसारमें शांति उत्पन्न हो सकती है ।

भावार्थ—लोहका गोला यदि अग्निमें तपाते तपाते अधिक गर्म हो जायगा तो वह जलमें डालनेपर अधिक पानी सोख लेगा । यदि वही गोला थोडा गर्म हो थोडा ही पानी सोखेगा । यदि वह गर्म नहीं होगा तो वह थोडा सा भी पानी नहीं सोखेगा । इसी प्रकार यह जीव इंद्रियोंके विषयोंको जितने अंशमें ग्रहण करता है उसके उतना ही राग समझा जाता है यदि वह इन्द्रियोंके विषयोंमें तल्लीन रहता है तो समझना चाहिये उसके रागकी अत्यंत तीव्रता है। यदि वह अनुक्रमसे विषयोंका त्याग करता जाता है तो समझना चाहिये कि उसके राग द्वेषकी भी कमी हो रही है । यदि वह विषयोंका सर्वथा त्याग कर देता है तो समझना चाहिए कि उसके राग द्वेषका सर्वथा अभाव होगया है । जिस प्रकार अग्नि पर ईंधन न डाला गया तो वह अग्नि वहींपर बुझ जाती है। फिर वह अग्नि किसीको जला नहीं सकती, इसी प्रकार विना राग द्वेषके यह जीव कभी किसी कालमें भी विषयोंको ग्रहण नहीं कर सकता अथवा यों समझना चाहिए कि जिस महापुरुषने विषयों का सर्वथा त्याग कर दिया है उसके राग द्वेषका सर्वथा अभाव है । यह सिद्धांत सर्वथा सिद्ध है। यदि भव्य जीवों को अपने आत्मामें परम शान्ति प्राप्त करना है तो उनको

इस यथार्थ सिद्धांत को जानकर अपना हठ छोड देना चाहिए। और इसी सत्य सिद्धांतको ग्रहण कर राग द्वेष का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। राग द्वेषका सर्वथा त्याग हो जानेसे विषयोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, तथा विषयोंका अभाव होनेसे कर्मबंधका अभाव हो जाता है और कर्मबंधका अभाव होनेसे शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। आत्माका यथार्थ कल्याण करनेके लिए यह सबसे सरलमार्ग है।

आगे सबका सारांश लिखते हैं।

यावद् यथावत्स्वपरात्मनो हि।
बोधो भवेद्वाखिलवस्तुनो न॥
रतिः स्वधर्मेऽखिलदोषदूरे।
न चात्मबाह्ये विषये विरक्तिः॥ ३७॥
तावत्किलाशापि भवेद् व्यथादा।
मनोपि धावेद्भुवि यत्र तत्र॥
बोधो यदा स्यात् स्वपरमात्मनो हि।
रतिः स्वधर्मे च परे विरक्तिः॥ ३८॥
आशा तदा नश्यति मूलतोऽपि।
मनो बहिर्धावति नैव नृणाम्।

ज्ञात्वेति कार्यः स्वपरात्मबोधः ।
परे विरक्तिश्च निजे रतिर्हि ॥ ३९ ॥
नश्येत्किलाशा भुवि सर्वथा हि
भ्रमेन्न चित्तं हि बहिः पदार्थे ।
आशा प्रणाशाच्च मनोनिरोधात् ।
स्यान्मोक्षलक्ष्मीः सुखदा स्वदासी ॥ ४० ॥

अर्थ—इस संसारमें जब तक अपने स्वरूपका और पर पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, अथवा जबतक समस्त पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तथा जबतक समस्त दोषोंसे रहित ऐसे अपने आत्माके यथार्थ स्वभावमें अनुराग नहीं होता और आत्मासे सर्वथा भिन्न ऐसे इंद्रियों के विषयोंसे सर्वथा वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, तबतक महा दुःख देनेवाली अनेक आशायें उत्पन्न होती रहती हैं और तब तक यह मन भी इस संसारमें इधर उधर सर्वत्र भ्रमण करता रहता है। जब इस भव्यजीवको अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जाता है तथा आत्मासे भिन्न अन्य समस्त पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है तथा अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें अनुराग उत्पन्न हो जाता है और आत्मासे भिन्न शरीरादिकसे सर्वथा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है उस समय यह आशा सर्वथा नष्ट हो जाती

है और उस समय उन भव्यजीवोंका यह मन भी कहीं भी परिभ्रमण नहीं करता। यही समझकर भव्यजीवोंको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका तथा आत्मासे भिन्न अन्य समस्त पदार्थोंका यथार्थज्ञान उत्पन्न कर लेना चाहिये तथा आत्मासे भिन्न शरीरादिक परपदार्थोंसे ममत्वका सर्वथा त्यागकर सबसे विरक्त हो जाना चाहिये और अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें अनुराग उत्पन्न करलेना चाहिये। आत्माके शुद्धस्वरूपमें अनुराग करने और पर पदार्थोंसे विरक्त हो जानेके कारण फिर आशाएं सब नष्ट हो जाती हैं और मन भी बाह्यपदार्थोंमें परिभ्रमण नहीं करता। इस प्रकार आशाओंके नाश हो जानेसे और मनका निरोध हो जानेसे सुख देनेवाली मोक्षलक्ष्मी भी अपनी दासी बन जाती है।

भावार्थ—मिथ्यात्वकर्मका तीव्र उदय आत्माके शुद्ध स्वरूपका ज्ञान नहीं होने देता और न अन्य पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होने देता है। तथा यही मिथ्यात्व न तो आत्माके शुद्ध स्वरूपमें अनुराग उत्पन्न होने देता है और न शरीरादिक पर पदार्थोंसे वैराग्य उत्पन्न होने देता है। जब काललब्धिके अनुसार दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम हो जाता है अथवा क्षय वा क्षयोपशम हो जाता है तब मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति

मिथ्यात्व इन तीनों प्रकारके मिथ्यात्वका अभाव हो जाता है तथा साथमें अनंतानुबंधी क्रोध, अनंतानुबंधी मान, अनंतानुबंधी माया और अनंतानुबंधी लोभ इन चारों अनंतानुबंधी कषायोंका भी अभाव हो जाता है। इस प्रकार जब ऊपर लिखे हुए सातों कर्मोंका अभाव हो जाता है तब आत्मामें एक प्रकारका प्रकाश प्रगट हो जाता है। यद्यपि यह प्रकाश आत्मामें ही था तथापि वह ऊपर लिखी मोहनीय कर्मकी सातों प्रकृतियोंसे ढका हुआ था। जिस प्रकार बादलोंके हट जानेसे सूर्यका प्रकाश प्रगट हो जाता है उसी प्रकार ऊपर लिखी सातों प्रकृतियोंके हट जानेसे आत्माका अमूर्त प्रकाश प्रगट हो जाता है। जिस प्रकार किसी अंधेरे में बैठे हुए मनुष्य को अपने परायेका ज्ञान नहीं होता और फिर प्रकाशके आजानेपर अपने पदार्थको पहिचानकर अलग कर लेता है और परपदार्थोंको अलग कर देता है, उसी प्रकार ऊपर लिखी हुई मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंके अभाव हो जानेसे जो आत्माके यथार्थ स्वरूपका प्रकाश झलकता है उस प्रकाशसे उस भव्यजीवको स्वपरभेदविज्ञान उत्पन्न हो जाता है। स्वपर भेदविज्ञानका अर्थ अपने पदार्थोंका और पर पदार्थोंको भिन्न भिन्न पहचान लेना है। जब यह भव्यजीव उस सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाशके कारण अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको पहिचान लेता है उसी

समय वह आत्मासे भिन्न शरीरादिक परपदार्थोंको भी पररूप ही पहिचान लेता है। तदनंतर वह भव्यजीव अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको ग्रहण कर उसमें अनुराग करने लगता है और शरीरादिक परपदार्थोंसे विरक्त होकर उनका सर्वथा त्यागकर देता है। जब यह भव्य जीव परपदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देता है तब उसकी आशाएं भी सब छूट जाती हैं और उसका मन भी अन्य समस्त परपदार्थोंसे हटकर अपने ही आत्माके शुद्धस्वरूपमें लीन हो जाता है। इस प्रकार एक सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेसे ही समस्त आशाओंका त्याग और मनका निरोध एकसाथ हो हो जाता है। आशाओंका त्याग होने और मनका निरोध होनेसे आगामी कर्मोंका बंध नहीं होता तथा मनके एकाग्र हो जानेसे ध्यान प्रगट हो जाता है और उस ध्यानके द्वारा पिछले संचित हुए समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मोंके नाश हो जानेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है और फिर यह आत्मा अनंतानंत कालतक अनंत और अक्षय सुखका अनुभव करता रहता है। अतएव समस्त भव्य-जीवोंको सबसे पहले मोहनीयकर्मको नाश कर सम्यग्दर्शन प्रगट कर लेना चाहिये और फिर आशाओंको नष्ट कर मनका निरोध कर लेना चाहिए। आशाओंका अभाव होने और मनका निरोध होनेसे शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। यही आत्मकल्याणका सर्वोत्कृष्ट मार्ग है।

आगे फिर भी उदाहरण देकर इस विषयको बतलाते हैं।

स्वस्थः स्वभावाद्धि तथेति तिष्ठत् ।
स्वात्मात्मना स्वात्मनि चात्मनो हि ॥
स्वानन्दसिंधोश्च पयःप्रवासी ।
चिद्रूपमूर्तिः सरसीव हंसः ॥ ४१ ॥
निश्चीयते ह्येव ततः स्वभावाद् ।
यथा प्रसंगो भुवि यस्य जन्तोः ॥
तथा स्वभावेन भवेत् स जीवो ।
ज्ञात्वेति कार्यः शिवदश्च संगः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिस समय यह जीव रागद्वेषका सर्वथा त्याग कर देता है, उस समय जिस प्रकार किसी महासरोवरके किनारे पर बैठा हुआ हंस शोभायमान होता है उसी प्रकार शुद्ध चैतन्यस्वरूप यह आत्मा अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्माके अपने ही स्वभावमें स्वभावसे ही स्वस्थ होकर ठहर जाता है। उस समय यह आत्मा अपने आत्माके शुद्ध स्वभावरूपी महासागरके जलपर निवास करता हुआ सरोवरके किनारे पर बैठे हुए हंसके समान सुशोभित होता है। इस प्रकार ऊपर लिखे हुए समस्त कथनसे यह बात अच्छी तरह समझमें आजाती है कि जिस जीवकी जैसी संगति रहती है वह जीव वैसे ही

स्वभावको धारण कर लेता है। यह स्वाभाविक बात है। यही समझकर भव्यजीवोंको मोक्ष प्राप्त करानेवाले वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी संगतिमें ही रहना चाहिये।

भावार्थ—जो पुरुष जैसी संगतिमें बैठता है वह वैसा ही बन जाता है। जो मनुष्य जुआरियोंमें बैठता है वह जुआरी हो जाता है, जो चोरोंकी संगतिमें रहता है वह चोर हो जाता है, जो भले आदमियोंकी संगतिमें रहता है वह भला मनुष्य हो जाता है और जो साधुओंकी संगतिमें रहता है वह साधु हो जाता है। यह एक स्वभाविक बात है। जो मनुष्य वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी संगति करता है वह उन्हींके समान समस्त क्रियाओंके करनेका प्रयत्न करता रहता है। मुनिराज जिस प्रकार ध्यान करते हैं और जिस प्रकार स्वाध्याय आदि करते हैं उसी प्रकार वह उनकी संगतिमें रहनेवाला मनुष्य भी स्वाध्याय वा ध्यान करनेका प्रयत्न करता है। तथा मुनिराज जिस प्रकार अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको अपने ही आत्मामें लीन करनेका प्रयत्न करते हैं, उसीप्रकार वह शिष्य भी अपने आत्माको अपने ही आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन करनेका प्रयत्न करता है। तथा मुनिराज जिस प्रकार अपने शुद्धात्मजन्य सुखरूपी महासागरमें निमग्न रहते हैं उसी प्रकार वह शिष्य भी अपने शुद्धात्मजन्य सुखका अनुभव करने लगता है। इस प्रकार

मुनियोंकी संगति करनेसे यह आत्मा ध्यान तपश्चरण आदिके द्वारा अपने समस्त कर्मोंको नष्ट कर सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है। यही समझकर समस्त भव्य जीवोंको अपने आत्माका कल्याण करनेके लिए वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी ही संगति करनी चाहिये।

आगे मुनियोंकी संगतिका फल दिखलाते हैं।

निर्ग्रंथवद्वा स निजात्मनिष्ठः।
स्वात्मा यतस्ते जिनवत्पवित्रः॥
भवेत्किलाचार्यवरस्य भावः।
श्रीकुंथुनाम्नः सुखदस्य चास्ति॥ ४३॥

अर्थ—वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी संगति करनेसे भव्य जीवोंका यह पवित्र आत्मा उन वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंके ही समान अपने आत्मामें लीन हो जाता है और भगवान् जिनेंद्रदेवके समान अत्यंत पवित्र हो जाता है। ऐसा सुख देनेवाले आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागरके भाव हैं तथा यही उनका उपदेश है।

भावार्थ—जिस प्रकार वीतराग निर्ग्रंथमुनि सदाकाल अपने आत्मामें लीन रहते हैं उसी प्रकार उनका संगतिमें रहनेवाला शिष्य भी उनके उपदेशानुसार अपने आत्मामें लीन होनेका अभ्यास करता है और फिर

अभ्यास करते करते उन मुनियोंके समान ही अपने आत्माके शुद्धस्वरूपमें लीन हो जाता है। तथा जिस प्रकार वे मुनिराज घातिया कर्मोंको नष्ट कर अरिहंत अवस्था प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार वह शिष्य भी ध्यान तपश्चरणके द्वारा अपने घातिया कर्मोंको नष्ट कर अरिहंत अवस्था प्राप्त कर लेता है। और यही आत्माका परम कल्याण है। इस प्रकार समस्त भव्यजीवोंको सुख देनेवाले आचार्यवर्य श्री कुंथुसागर महाराजके भाव हैं। यही समझकर समस्त भव्यजीवोंको वीतराग मुनियोंकी संगतिमें ही रहनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

आगे मनके निरोध करनेका उपाय बतलाते हैं।

द्वेषाच्च रागाच्च मनोगतिर्वा।
भवेत्सदा वा खलु यत्र तत्र॥
शत्रौ च मित्रे विषयेऽक्षजे वा।
तयोर्निरोधाद्धि मनोनिरोधः ॥२४॥

अर्थ—इस मनकी गति रागद्वेषके कारण ही शत्रु मित्र वा इंद्रियोंके विषयोंमें अथवा अन्य अनेक संकल्प विकल्पोंमें होती रहती है। यदि इन राग द्वेष दोनोंका सर्वथा त्याग कर दिया जाय तो मनकी गति भी अवश्य रुक जाती है और इस प्रकार सहज रीतिसे मनका निरोध हो जाता है।

भावार्थ—यह निश्चित सिद्धांत है कि मनका भ्रमण राग द्वेषके कारण ही होता है। विना राग द्वेषके मनका भ्रमण कभी नहीं हो सकता। यदि राग द्वेषका सर्वथा त्याग कर दिया जाय वो मनका निरोध अवश्य हो जाता है। अत एव मनका निरोध करनेके लिये राग द्वेषका त्याग अवश्य कर देना चाहिये। तथा रागद्वेषका त्याग मुनियोंकी समीप रहनेसे ही हो सकता है। अत एव मनका निरोध करनेके लिये मुनियोंकी संगतिमें रहना ही सर्वोत्तम उपाय है।

आगे इसी विषयको स्पष्टरीतिसे लिखते हैं।

रागं च द्वेषं निखिलं विहाय।
निर्ग्रंथसंगाच्च तदाश्रयाद्वा॥
चित्तं स्वकीयं जिननाथशास्त्रे।
वा सप्ततत्त्वस्य विवेचने वा॥४५॥
शुद्धस्वरूपे च निजात्मनो वा।
जिनस्य सिध्दस्य यतेश्च सूरेः।
श्रीपाठकानां चरणारविन्दे।
क्षमादिधर्मे वरभावनायाम्॥ ४६॥
श्रीवीतरागे च निजात्मभावे।
व्रते चरित्रे समितौ च गुप्तौ।

करोति लीनं स्ववशीकृतात्मा ।
तस्यैव भव्यस्य मनोनिरोधः ॥ २७ ॥

अर्थ—जो भव्यजीव वीतराग निर्ग्रंथ मुनियोंकी संगति करनेसे अथवा उनके आश्रयमें रहनेसे अपने समस्त रागद्वेषका त्याग कर देता है । और फिर अपने मनको भगवान् जिनेंद्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंके स्वाध्याय करनेमें लगा लेता है, अथवा जीवादिक सातों तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका विवेचन करनेमें लगा लेता है, अथवा अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लगा लेता है अथवा श्री अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुओंके चरणारविंदमें लगा लेता है, वा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंमें लगा लेता है, अथवा अनित्यादिक बारह भावनाओंके चिंतवन करने में लगा लेता है अथवा अपने आत्माके वीतराग परिणाम में लगा लेता है, वा व्रत, समिति, गुप्ति, चारित्र आदिमें लीन कर लेता है इस प्रकार जो अपने आत्माको वश करनेवाला भव्य जीव अपने मनको ऊपर लिखे कार्योंमें लगा लेता है उस भव्यजीवके मनका निरोध अवश्य हो जाता है ।

भावार्थ—मनको निरोध करनेका सबसे सरल उपाय यह है कि सबसे पहले मन की चंचलताके कारण रागद्वेष को दूर करना चाहिये । यह बात

पहले भले प्रकार बतला चुके हैं कि रागद्वेष का अभाव मुनियोंके आश्रयमें ही हो सकता है। इसका भी कारण यह है कि मुनिराज वीतराग होते हैं उनके राग-द्वेषका सर्वथा अभाव होता है। अतएव उनकी संगतिमें रहनेसे वा उनके आश्रयमें रहनेसे शिष्योंका राग द्वेष भी दूर हो जाता है। राग द्वेषके दूर होनेसे मनकी चंचलता दूर हो जाती है तथा मनकी चंचलता दूर होनेपर उस मनको फिर भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंके स्वाध्याय करनेमें लगाना चाहिये। शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेमें मन वचन काय तीनों लग जाते हैं। इसलिए स्वाध्याय करनेसे मनकी चंचल गति रुक जाती है और मन वशमें हो जाता है वा मनका निरोध हो जाता है, इसी प्रकार आत्माका स्वरूप चिंतवन करनेसे वा पुद्गला-दिक परपदार्थोंका स्वरूपचिंतवन करनेसे भी मनका निरोध हो जाता है। जब यह जीव किसी भी तत्त्वका चिंतवन करता है तब वह मन अन्य समस्त चिंतवनोंको छोड देता है और उस जीवादिक पदार्थके चिंतवन करनेमें ही लग जाता है। अन्य समस्त चिंतवनोंका त्याग कर किसी एक पदार्थके चिंतवन करनेमें ही मनको लगा देना मनका निरोध करना है। इसी प्रकार अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठीके चरणारविंदोंमें अपने मनको लगाना भी मनका निरोध करना है। इन

पांचों परमेष्ठियोंकी पूजा स्तुति करना वा उनके गुणोंका स्मरण करना मनका निरोध करना है। पूजा स्तुति वा गुणस्मरण करनेमें भी मन अन्य सब चिंतवनोंसे हटकर पंच परमेष्ठीके गुण स्मरण करनेमें ही लग जाता है और यही मनका निरोध है। अथवा अपने मनको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपके चिंतवन करनेमें लगाना चाहिये। शुद्ध स्वरूपका चिंतवन करना भी मनका निरोध है। अथवा उत्तम क्षमा मार्दव आदि दशधर्मोंके स्वरूपका चिंतवन करनेमें मनको लगाना चाहिये। अथवा अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंके चिंतवन करनेमें अपने मनको लगाना चाहिये। धर्म और भावनाओंके चिंतवन करनेसे मनका निरोध अच्छी तरह हो जाता है। अथवा अपने आत्माके वीतराग भावोंमें अपने मनको लगाना चाहिये। आत्माके वीतराग भाव ही सर्वोत्कृष्ट भाव हैं और उनमें मनको लीन करना मनका सर्वोत्कृष्ट निरोध है। अथवा व्रत समिति गुप्ति वा चारित्रमें मनको लगानेसे मनकी अन्य गति सर्वथा रुक जाती है और वह मन एकाग्ररूपसे उसीमें लग जाता है। मनका एकाग्र रूपसे किसी एक पदार्थमें लग जाना ही मनका निरोध है। इसप्रकार मनके निरोध करनेके लिये अनेक उपाय हैं। यदि उन समस्त उपायोंका सारांश बतलाया जाय तो यही कहना चाहिये कि मनका निरोध करनेके लिये

मनको पर पदार्थोंसे हटालेना चाहिये तथा उसे अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन कर लेना चाहिये। जो भव्य पुरुष मुनियोंके आश्रयमें रहकर सबसे पहले मुनियोंके समान राग द्वेषको दूर कर वीतराग हो जाता है और फिर वह अपने मनको आत्माके शुद्ध स्वभावमें लगालेता है अथवा ध्यान, तपश्चरण, व्रत चारित्र समिति गुप्ति आदि में लगालेता है उस भव्य जीवका मन अवश्य ही निरुद्ध हो जाता है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

आगे प्रकारान्तरसे मनको निरोध करनेका उपाय बतलाते हैं।

स्वस्वविषये चरतामिन्द्रियाणां कदम्बकम्।
वशं कृत्वा सुधी दक्षः करोति स्ववशं मनः ॥४८॥

अर्थ—ये इन्द्रियां अपने अपने विषयोंकी ओर दौडती हैं। इसलिये जो चतुर और बुद्धिमान पुरुष अपने अपने विषयोंमें दौडने वाली इन समस्त इन्द्रियोंके समूहको वशमें कर लेता है वह मनुष्य अपने मनको भी अवश्य वश कर लेता है।

भावार्थ—इन्द्रिया पांच हैं। स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र। स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्शको ग्रहण करती है। शीत, उष्ण, हलका, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना ये आठ प्रकारके स्पर्श हैं। स्पर्शन इन्द्रिय इन्हीं स्पर्शरूप विषयोंमें लगी रहती है। सदाकाल इन्हींको ग्रहण करनेमें

लगी रहती है। खट्टा, मीठा, कडवा, चर्परा, कषायला, ये पांच रस हैं। रसना इन्द्रिय सदाकाल इन्हीं विषयोंको ग्रहण करनेमें लगी रहती है। घ्राण इन्द्रिय गंधको ग्रहण करती है। गंधके दो भेद हैं। एक सुगंध और दूसरा दुर्गंध। घ्राण इन्द्रिय इन्हींको ग्रहण करती रहती है। चक्षु इन्द्रिय रूपको ग्रहण करती है। लाल पीला नीला सफेद और काला ये रूपके पांच भेद हैं। चक्षु इन्द्रिय इन्हीं रूपोंमें लगी रहती है। श्रोत्र इन्द्रिय शब्दको ग्रहण करती है शब्दोंके साक्षर अनक्षर आदि अनेक भेद हैं। अथावा सितार, सारंगी, ढोल मृदंग, वंशी प्रतिध्वनि आदिके भेदसे होनेवाले शब्दोंके अनेक भेद हैं। उन सबके सुननेमें करण इन्द्रिय लगी रहती है। तथा मन इन सबके साथ लगा रहता है। यद्यपि असेनी जीवोंके ये इन्द्रिया विना मनके भी अपना काम करती हैं परंतु सेनी जीवोंकी इन्द्रियां मनके साथ अपने विषयोंका अनुभव करती है। इसलिए जो चतुर और बुद्धिमान् सबसे पहले इन पांचों इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंमें नहीं जाने देता उनको रोक कर अपने आत्मामें लीन कर लेता है उस महापुरुषका मन भी अवश्य रुक जाता है। जब वह मन इन्द्रियोंके विषयोंसे हट जाता है तब उसको कोई अन्यकार्य न रहनेके कारण वह अपने आप अपने आत्मामें लीन होता है। अथवा उत्तमक्षमा आदि आत्माके धर्मोंमें लीन होता है वा बारह भावना-

ओंके चिंतवन करनेमें लग जाता है। अथवा ध्यानमें लग जाता है। तथा इस प्रकार वह अन्य सब चिंतवनोंसे हट कर वह अपने आत्मामें वा आत्माके किसी धर्ममें लग जाता है। इसीको मनका निरोध कहते हैं।

यहांपर इतना और समझ लेना चाहिये कि जब इन्द्रियोंके, विषय रुक जाते हैं अर्थात् इन्द्रियां सब वशमें हो जाती हैं तब आशा भी अपने आप नष्ट हो जाती है। आशा तो इन्द्रियोंके पीछे लगी रहती है। जो इन्द्रियोंका निग्रह हो जाता है तब भला आशा कहां ठहर सकती है और जब आशा ही नहीं रहती तब मनकी गति कैसे हो सकती है। इसलिये यह अपने आप सिद्ध हो जाता है कि इन्द्रियोंका निग्रह कर लेनेसे वा इन्द्रियोंके वश कर लेनेसे आशाएं भी अपने आप नष्ट हो जाती हैं और मनका निरोध भी अपने आप हो जाता है अतएव मनका निरोध करनेके लिये सबसे पहले इन्द्रियोंका निरोध कर लेना चाहिये। मनको निरोध करनेका यह सबसे अच्छा उपाय है।

आगे इन्द्रियां और मनको वश करनेका फल दिखलाते हैं।

इन्द्रियाणि मनः कृत्वा स्ववशं च निजात्मनि।
तिष्ठेद्यः शुद्धचिद्रूपः सोऽवश्यं मोक्षभाग्भवेत्॥४९॥

अर्थ—जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा अपनी समस्त इन्द्रियोंको और मनको वशमें करके अपने शुद्ध आत्मामें लीन हो जाता है वह महापुरुष अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—यह पहले बतला चुके हैं कि इन्द्रियोंको वशमें कर लेनेसे मन अपने आप वशमें हो जाता है। तथा जब मन वशमें हो जाता है तब यह आत्मा अपने आप अपने आत्मामें लीन हो जाता है। क्यों कि यह आत्मा मनके द्वारा वा इन्द्रियोंके द्वारा ही सर्वत्र भ्रमण करता था। जब इंद्रियां और मन ही अपने वशमें होकर अत्यंत शांत हो जाते हैं तब यह आत्मा अवश्य ही अपने ही आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन हो जाता है। तथा तथा जो आत्मा अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन हो जाता है। वह उस ध्यानके द्वारा अपने समस्त कर्मोंको नष्ट कर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

आगे सबका सारांश बतलाते हैं।

रागद्वेषविनाशाच्च मनोऽवश्यं निरुध्यते।
मनोनिरोधादखिलं कर्मव्यूहो विनश्यति ॥५०॥

कर्म नाशाद्भवेन्मोक्षो मोक्षेऽनन्तसुखं भवेत्।
तस्मान्मुमुक्षुभिः कार्यं रागद्वेषविनाशनम् ॥५१

अर्थ—रागद्वेषका नाश होनेसे मनका निरोध अवश्य हो जाता है, तथा मनका निरोध होनेसे कर्मोंका समूह अवश्य नष्ट हो जाता है। इस प्रकार समस्त कर्मोंका नाश होनेसे मोक्षकी प्राप्ति अवश्य हो जाती है और मोक्ष प्राप्त होनेपर अक्षय अनंतसुख प्राप्त हो जाता है। अत एव मोक्षार्थी बुद्धिमान् पुरुषोंको सबसे पहले राग और द्वेष इन दोनोंका नाश करना चाहिये।

भावार्थ—इस संसारमें समस्त दुःखोंकी जड राग द्वेष है। राग द्वेषके कारण ही यह जीव चारों गतियोंमें परिभ्रमण करता रहता है। संसारके समस्त पाप इन राग द्वेषसे ही उत्पन्न होते हैं। यदि राग द्वेष नष्ट हो जाय तो फिर कोई भी पाप कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। राग द्वेषके नष्ट होनेसे मोह मद काम आदि आत्माके समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। तथा फिर यह आत्मा पूर्ण रूपसे निर्विकार होनेसे इन्द्रियोंका निग्रह भी हो जाता है। तथा इन सब कारणोंके मिलनेसे उस महापुरुषके समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। और समस्त कर्मोंका नाश होना ही मोक्ष है। इस प्रकार रागद्वेषके नाश हो जानेसे यह आत्मा सदाकाल तक अक्षय अनंत सुखका अनुभव करता रहता है। इस प्रकार परम पावन मुनिराजोंके आश्रयमें रहनेसे इस आत्माका कल्याण बहुत ही सरल रीतिसे हो जाता है।

आगे इस ग्रंथके पढनेका फल दिखलाते हैं।

ग्रंथं ह्यमुं यः पठतीति भक्त्या।
ह्याशा प्रणाशीति मनोनिरोधी॥
स्याद्धर्ममूर्तिः स च विश्वबंधुः।
स एव गच्छेद्धि शिवं कृतार्थी॥५२॥

अर्थ—जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस ग्रंथका पठन पाठन करता है उसकी आशा भी सब नष्ट हो जाती हैं और उसके मनका निरोध भी अवश्य हो जाता है। तथा वह पुरुष धर्मकी मूर्ति बन जाता है, समस्त संसारका कल्याण करनेवाला संसार भरका बंधु बन जाता है, कृत कृत्य हो जाता है और अंतमें वह अवश्य ही मोक्षमें जा विराजमान होता है।

भावार्थ—इस ग्रंथमें मुनियोंकी संगति करने, राग द्वेषको दूर करने, मनका निरोध करने और मोक्ष प्राप्त करानेका उपाय बतलाया है। जो पुरुष इसको पढकर इससे लाभ उठाना चाहता है, उसको मुनियोंकी संगति अवश्य करनी चाहिये मुनियोंकी संगतिसे उसका रागद्वेष भी नष्ट हो जाता है, मनका निरोध भी हो जाता है और अंतमें मोक्षकी प्राप्ति भी अवश्य हो जाती है। यही इस ग्रंथके पढनेका अंतिम फल है।

आगे आचार्य इस ग्रंथको पूर्ण कर आशीर्वाद देते हैं।

आचन्द्रसूर्यं सुखशान्तिपानं।
ग्रंथः सदायं भुवि कारयन्सताम् ॥
श्रीपार्श्वनाथोपि सदेति जीयाद् ।
भावोस्ति सूरेर्वरकुंथुनाम्नः ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह मनोनिग्रह नामका ग्रंथ इस संसारमें जबतक सूर्य चन्द्रमा है तबतक भव्यजीवोंको सुख और शान्तिका पान कराता हुआ सदाकाल जीवित रहे। तथा भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी भी सदाकाल जयवंत रहे। ये ही आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर स्वामीके भाव हैं।

भावार्थ— आचार्य वर श्रीकुंथुसागर स्वामी इस ग्रंथको पूर्णकर आशीर्वादात्मक अंतिम मंगलाचरण करते हैं और कहते हैं कि जिन भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीके समीप तथा उन्हींके आश्रयमें उन्हींके जिनालयमें रहकर यह ग्रंथ पूर्ण हुआ है। इसलिए वे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी इस संसारमें जबतक सूर्य चंद्रमा है तबतक जयवंत बने रहे। तथा यह ग्रंथ भी तबतक ही भव्यजीवोंको सुख और शान्तिका पान कराता हुआ, मोक्षमार्ग दिखलाता हुआ और अनेक भव्यजीवोंको मोक्षमार्गमें लगाता हुआ जयवंत बना रहे।

इति श्रीमदाचार्य प्रवर श्रीकुंथुसागरसूरि विरचिते
मनोनिग्रहमंत्रग्रंथे मनोनिरोधोपाय
वर्णनो नाम द्वितीयोध्यायः

इस प्रकार श्रीमान् आचार्यवर्यश्री कुंथुसागर विरचित
मनोनिग्रहमंत्र नामके ग्रंथकी 'धर्मरत्न' पं. लालाराम
शास्त्री विरचित सरल हिन्दी भाषा टीकामें
मनके निरोध करनेका उपायको वर्णन
करनेवाला यह दूसरा अध्याय
स—मा—प्त—हु—आ।

—*—

लौकिकशांति मंत्र।

इस ग्रंथमें अभीतक पारमार्थिक रूपसे आत्मशांति किस प्रकार हो सकती है? अत्यंत चंचलस्वरूप मनको किस प्रकार वशमें कर सकतें हैं? इस विषयका वर्णन किया गया है। क्यों कि मनके द्वारा ही यह आत्मा संसार बंधन में पडकर अशांतिमय जीवनको व्यतीत करता है। इसलिए अलौकिकशांति अर्थात् आत्मोन्नतिके लिए मनका निग्रह करना आवश्यक है। अब यहांपर आचार्य यह बतलाते हैं कि मनको भी निरोध करनेके लिए एवं लौकिक शांतिके लिए भी कुछ मंत्र हैं, जिनका जप करनेसे लौकिकशांति बनी रहती है और परंपरासे अलौकिक शांति भी मिलती है।

उन मंत्रोंको जपनेके विधिसहित नीचे दिया जाता है।

१ सर्वसिद्धि मंत्र

' ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमः '

इस मंत्रको एकांतमें स्थिरचित्त होकर प्रतिदिन एक हजार प्रमाणसे एक महीने पर्यंत जप करें। इससे सर्व इच्छित कार्यकी सिद्धि होगी।

१ सर्व शांतिकरमंत्र

‘ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ’

इस मंत्रको एकांतमें बैठकर स्थिरचित्तसे प्रतिनित्य १०० वार जपनेसे घरमें सर्व तरहकी शांति रहेगी।

२ आरोग्य मंत्र

“ ॐ ” इस बीजाक्षर मंत्रको एकांतमें एकाग्रता व शांतिसे ३०० वार प्रतिनित्य जप करनेसे लौकिक सर्व प्रकारका आरोग्य व स्वास्थ्य बना रहेगा।

सर्व ऋद्धिसिद्धि मंत्र।

ॐ चंद्रप्रभ प्रभाधीश चंद्रशेखर चंद्रप्रभ चंद्रबीज नमोस्तु ते। ॐ ह्रीं श्रीं चंद्रप्रभ ह्रीं श्रीं कुरु कुरु स्वाहा ”

इस मंत्रको अर्धचंद्राकार यंत्रमें पूर्णिमाके दिन चंद्रोदयके समय भोजपत्रपर अनारकी कलम व अष्टगंधकी स्याईसे लिखें। फिर तीन रात्रीतक मूलमंत्रका जाप करें। तब उसकी सिद्धि होगी। इस सिद्धयंत्रको पासमें रखनेसे सुख, शांति, यश, धनकनक आदिकी वृद्धि होगी, दुष्टग्रह राक्षसादिकका भय जरा भी नहीं होगा।

नोट—इन सब मंत्रोंके जप करते समय चित्तस्थिरता शांति, मनवचनकायविशुद्धि, निर्भयता आदि बातोंकी अत्यंत आवश्यकता है।

अथ प्रशस्तिः

आगे आचार्य अपनी प्रशस्ति लिखते हैं और उसमें भी अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हुए ग्रंथ निर्माणका हेतु बतलाते हैं।

श्रीशान्तिसिंधोः सुखशान्तिमूर्ते- ।
दीक्षागुरोरेव कृपाप्रसादात् ॥
विद्यागुरोरेव सुधर्मसिंधो- ।
र्ग्रंथो मयायं शिवदः पवित्रः ॥ ५४ ॥
अबालवृद्धादि मनःप्रशान्त्यै ।
स्वानन्दतुष्टेन दिगम्बरेण ॥
श्रीकुंथुनाम्नात्मरतेन नित्यं ।
भक्त्या प्रणीतोऽस्ति न तु प्रसिध्यै ॥ ५५ ॥

अर्थ— सदाकाल अपने आत्मामें लीन रहनेवाले तथा परम दिगम्बर अवस्था धारण करनेवाले और अपने आत्मजन्य आनन्दमें संतुष्ट रहनेवाले ऐसे मुझ आचार्यवर्य श्रीकुंथुसागर स्वामीने सुख और शांतिकी मूर्ति ऐसे मेरे दीक्षागुरु आचार्यवर्य श्रीशांतिसागर स्वामी-

की कृपा और उनके प्रसादसे तथा मेरे विद्यागुरु आचार्य-वर्य श्रीसुधर्मसागर महाराजकी कृपा और उनके प्रसादसे बालक वृद्ध आदि सबके मनको शांत करनेके लिए भक्ति पूर्वक इस ग्रंथको निर्माण कर पूर्ण किया है। यह ग्रंथ मोक्ष देनेवाला है और परम पवित्र है। मैंने यह ग्रंथ अपनी किसी प्रसिद्धिके लिए नहीं लिखा है।

आगे आचार्य अपनी लघुता दिखलाते हैं।

भवेत्कचित्कदाचिन्मे ग्रंथेऽस्मिन् स्खलनं यदि ।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा मुनयः शोधयन्तु वै ॥५६॥

अर्थ—यदि इस ग्रंथमें मेरे अज्ञानके कारण वा किसी प्रमादके कारण कदाचित् किसी स्थानपर कुछ भूल हो अक्षर मात्रा कम हो वा भावमें कुछ अंतर हो तो कृपालु मुनियोंको शुद्धकर लेना चाहिये।

आगे आचार्य इस ग्रंथकी रचनाका काल और स्थान लिखते हैं।

चतुर्विंशतिसंख्याते मोक्षं प्राप्ते च सन्मतौ ।
कार्तिके पूर्णिमायां च ह्यष्टषष्ठ्याधिके शते ॥५७॥
हिम्मतसिंहभूपेन रक्षिते न्यायशालिना ।
ईडरे पत्तने स्थित्वा पार्श्वनाथजिनालये ॥ ५८ ॥

धीमता स्वात्मतुष्टेन कुंथुसागरसूरिणा ।
ग्रंथोऽयं लिखितः श्रीदो जीयादाचन्द्रतारकम्॥५९

अर्थ—श्रीमहावीर स्वामीके मोक्ष प्राप्त होनेके अनंतर चौवीससौ अडसठवें वर्षमें कार्तिक शुक्ल पूर्णमासीके दिन न्यायशील राजा हिम्मतासिंहके राज्यान्तर्गत ईडर नगरके श्रीपार्श्वनाथ चैत्यालयमें बैठकर अत्यंत बुद्धिमान् और अपने आत्मामें लीन रहनेवाले आचार्य श्रीकुंथुसागर स्वामीने यह ग्रंथ निर्माणकर पूर्ण किया है । ऐसा यह ग्रंथ इस संसारमें जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं तबतक जीवित और जयशील बना रहे ।



श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके स्थायिसदस्य.

५३ चंदुलाल मणिलाल कोठारी ईडर
५४ कोदरलाल गुलाबचंद मोडासिया देरोळ
५५ मगनलाल केवलदास ,,
५६ अमृतलाल तलकचंद ,,
५७ नेमचंद नानचंद गांधी ,,
५८ { शहा पन्नालाल अखेचंद
दोशी निहालचंद तलकचंद } विजयनगर
५९ स. सिं. गणपतलालजी खुरई
६० शाह पन्नालाल रतनलालजी ओबरी
६१ स. दि. जैन पंच जुना मंदिर सागवाडा
६२ सेठ रामचंदर सुवालालजी वरंगल
६३ स. दि. दसाहुमड जैनपंच पालोदा
६४ श्रीआचार्य कुंथुसागर सरस्वती भवन नवागाम
६५ दि. जैन मंदिर सरस्वती भवन पनागर
६६ सेठ लूणकरण मदनमोहनजी उज्जैन
६७ सर सेठ हुकुमचंदजी K.T. इंदौर
६८ सेठ नगजी अमरचंदजी देवळ

६९ सेठ मणिलाल केवलजी देवळ
७० गांधी लिलाचंद फतेहचंद जादर
७१ सेठ तेजपालजी छावडा कोछोर
७२ सेठाणी सुखराणीजीबाई खुरई
७३ ब्र. सुमतीबेन पोसीना
७४ शा. भोगीलाल साबळी
७५ दि. जैन मंदिर जांबुडी
७६ सेठ जीवराज हिराचंद आळंद
७७ दि. जैन मंदिर दावोळ
७८ शा. फूलचंद ताराभाई पादरा
७९ दि. जैन मंदिर गटोडा
८० ब्र. विद्याधरजी आ. संघ
८१ दि. जैन मंदिर बदराह
८२ श्री शहा मगनलाल नानचंद सोनासन
८३ ,, मगनलाल पन्नालाल तलाटी दाहोद
८४ ,, रतनबाई दोशी रेवचंद मगनलालनी विधवा ननंदपूर
८५ सेठ गणेशलालजी उदयपुर
८६ ,, भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज ऋषभदेव
८७ ,, दि. जैन पंच केसरिया
८८ ,, रेवचंद रवचंद रखियाल
८९ गांधी उगरचंद फुलचंद ,,
९० ,, शहा रेवचंद खेमचंद ,,